ISSN : 2582-6360

विश्व दीप दिव्य संदेश

मासिक शोध पत्रिका

वर्ष 28 | अंक 6-7 विक्रम संवत् 2081 जुन-जुलाई 2024| पृष्ठ 58

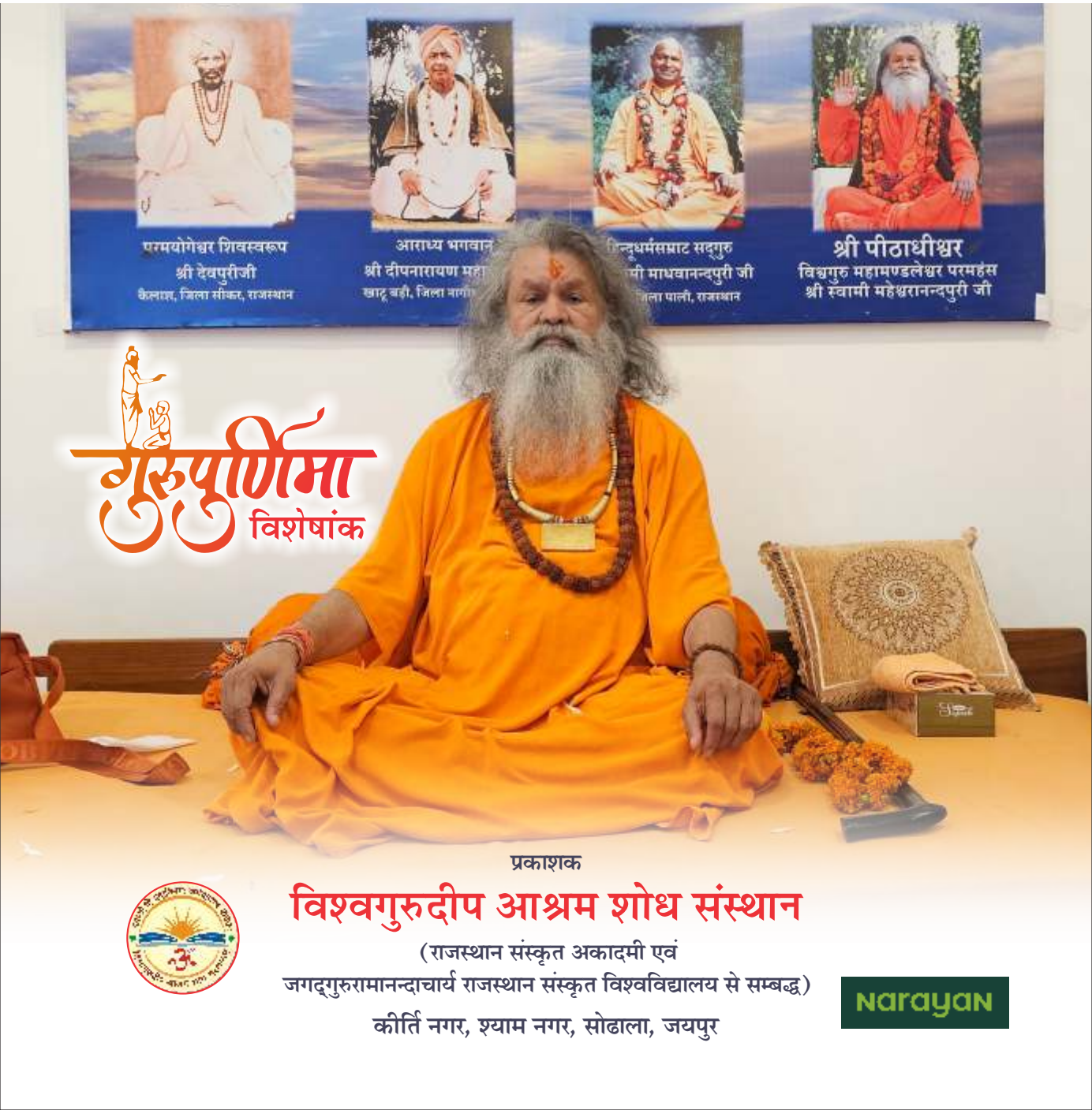

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(राजस्थान संस्कृत अकादमी एवं
जगद्गुरुरामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Narayan

ISSN : 2582-6360

विश्व दीप दिव्य संदेश

मासिक शोध पत्रिका

वर्ष 28 | अंक 6-7 विक्रम संवत् 2081 जुन-जुलाई 2024 | पृष्ठ 58

परामर्शदाता
देवर्षि कलानाथ शास्त्री
प्रो. बनवारीलाल गौड़
प्रो. दयानन्द भार्गव
प्रो. कैलाश चतुर्वेदी
डॉ. शीला डागा
प्रो. (डॉ.) गणेशीलाल सुथार

प्रधान सम्पादक
श्री सोहन लाल गर्ग
श्री एम.एल. गर्ग

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

सह-सम्पादक
डॉ. रघुवीर प्रसाद शर्मा
श्री कपिल अग्रवाल
तिबोर कोकेनी
श्रीमती अन्या वुकादिन

- प्रमुख संरक्षक -
परम महासिद्ध अवतार श्री अलखपुरी जी
परम योगेश्वर स्वामी श्री देवपुरी जी

- प्रेरणास्त्रोत -
भगवान् श्री दीपनारायण महाप्रभुजी

- संस्थापक -
परमहंस स्वामी श्री माधवानन्द जी

- संरक्षक -
विश्वगुरु महामण्डलेश्वर परमहंस
श्री स्वामी महेश्वरानन्दपुरीजी

- प्रबन्ध सम्पादक -
महामण्डलेश्वर स्वामी ज्ञानेश्वर पुरी

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(राजस्थान संस्कृत अकादमी एवं जगद्गुरुरामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Website : vgda.in | **Youtube :** www.youtube.com/c/vishwagurudeepashram | **E-mail :** jaipur@yogaindailylife.org

Sponsored by : **Narayan D.O.O. - narayanfoods.com**

अनुक्रमणिका

1.	सम्पादकीय	डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा	3
2.	गुरु आराधना		4
3.	श्री अग्रदेवाचार्यजी महाराज (रैवासा)		6
4.	ऊँ श्री देवपुरीजी महादेव का परिचय		10
5.	पण्डित श्री सरयू प्रसाद शास्त्री द्विदेवी		25
6.	त्रिवेणी धाम की सन्त परम्पराएँ		28
7.	वेदविज्ञानरहस्यविद् स्वामी सुरजनदास जी		32
8.	श्री वीरेश्वर शास्त्री द्राविड़		42
9.	श्री कलानाथ शास्त्री		45
10.	श्री नवलकिशोर काङ्करः		54

विश्वदीप दिव्य संदेश पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क **800/- रूपये**

खाता संख्या : 5013053111

IFS Code : KKBK0003541

मुद्रण : **कन्ट्रोल पी**, जयपुर - मो. : 9549666600

सम्पादकीय

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित मासिक शोधपत्रिका का वर्ष 2024 का षष्ठम-सप्तम अंक आपके करकमलों में अर्पित करते हुए अत्यधिक हर्ष का अनुभव हो रहा है। भारतीय धर्म-संस्कृति के शोधलेखों का यह संग्रह विद्वानों द्वारा सराहा जा रहा है। विद्वानों द्वारा नियमित भेजे जा रहे शोधलेख हमारा मनोबल बढ़ा रहे हैं व पत्रिका के महत्त्व को भी आलोकित कर रहे हैं। पूर्व अंकों में सभी उच्चस्तरीय विद्वानों के लेख प्रकाशित हुए हैं।

यह अंक गुरुपूर्णिमा विशेषांक है। इस अंक में गुरु महिमा के साथ गुरुओं के गौरव का वर्णन किया है।

प्राचीन पाण्डुलिपियों से वेद मंत्रों में गुरु आराधना को प्रथम लेख के रूप से लिया है। तत्पश्चात् भी अग्रदेवाचार्य जी महाराज रैवासा के गौरव का वर्णन किया गया है। इसी क्रम में ऊँ श्रीदेवपुरीजी महादेव का परिचय दिया गया है। पण्डित श्री सरयू प्रसाद द्विवेदी जी की सारस्वत साधना का प्रकाशन आध्यात्मिक अनुरागियों को नवीन दिशा प्रदान करेगा, इसी कड़ी को जोड़ती त्रिवेणी धाम की सन्त परम्परा गुरु महिमा को बढ़ाती है।

पण्डित सुरजनदास स्वामी जी, श्री वीरेश्वर शास्त्री जी एवं आदरणीय देवर्षि कलानाथ शास्त्री जी का आदर्श व्यक्तित्व सुधीजनों के लिए पाथेय बनेगा। इसी शुभकामनाओं के साथ गुरुपूर्णिमा का यह अंक समर्पित करते हैं।

आशा है, सुधी पाठक इन्हें रुचिपूर्वक हृदयंगम करने में अपना उत्साह पूर्ववत् बनाये रखेंगे।

शुभकामनाओं सहित....

-डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

गुरु आराधना

श्री गणेशाय नमः

श्री लक्ष्मीकान्ताय नमः ॥ श्री परमेश्वर्यै नमः ॥

अथाराधना प्रयोग लिख्यते ॥

गुरु चतुष्टयस्य केशवादीनां च प्रत्येकमेकैक इत्येवं षोडष बाह्मणमभिप्रेत्योच्यते ॥ प्रातर्होमानंतर ब्रह्मीभूत स्वगुरोः समाराधनं करिष्येति संकल्प: ॥ गुरवर्थे भवद्भि: क्षणः कर्तव्यः ॥॥ एवम्परम गुर्वर्थे भवद्भि: क्षण: कर्तव्य: ॥ परमेष्ठी गुर्वर्थे भवद्भि: क्षणः कर्तव्यः ॥ परात्पर गुर्वर्थे भवद्भि: क्षणः कर्तव्यः ॥ यद्वा विश्वरूप धराचार्यर्थे भवद्भि: क्षणः कर्तव्यः ॥ ततो गुरू अयमीति चत्वारो ब्राह्मणान्निमंत्र्य मध्यान्हे विप्राय शुक्ले केशवार्थे भवद्भि: क्षणः कर्तव्य: ॥ कृष्णे संकषणार्थे भवद्भि:। इत्येवं षोडशं बाह्मणान्नि मंत्र्य मध्यान्हे विप्रानाहूय कर्त्ता शुचिराचम्य ॥ पवित्रपाणि: प्राणानायम्य देश कालौ स्मृत्वा श्री नारायण प्रीत्यर्थे ब्रह्मीभूत स्वगुरो: आराधनं करिष्ये ॥ इति संकल्पा ॥

गन्धा अक्षत तुलसी कर्पूर मिश्र जलेन बरेण क्रमेण तेषां पाद प्रक्षालनं कृत्वा तानाचम्य ॥ स्वयं चाचम्य पादप्रक्षालनोदकं पात्रान्तरे गृहीत्वा तत्पादौ साक्षत गन्धपुष्प तुलसीदलैरभ्यर्च्य आनन्द मानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञान स्वरूपं निजबोधयुक्तम् ॥ योगीन्द्रमीज्यंभव रोग वैद्यं श्रीमद्गुरुन्नित्यमहन्नमामि ॥ इति नमस्कुर्यात् ॥ एवं सर्वेषां पूजां कृत्वा गन्धादिभि: तत्पात्रमलंकृत्य देवं सन्निधौ संस्थाप्य कुशासनेषु प्राङ्मुखान्वा उपवेश्य पुरुष सूक्तेन प्रत्य ऋचां ॥ ॐ नमो नारायणा येति मंत्र सहितेनावाहनादि षोडशोपचारै: पदार्थानु समयेनाभ्यर्चयेत्। यद्वा गन्धपुष्प धूपदीप आच्छादनान्त पूजा द्रष्टव्या ॥ तत: सर्वेषु पात्रेषु पायसादि विशिष्ट द्रव्यं साज्य व्यञ्जनसहितं च परिविष्टस्य गायत्र्या प्रोक्ष्य गुरवे इदमन्नं परिविष्ट परिवेक्ष्यमाणं च ॥ आतृप्ते : स्वाहा हव्यन्न मम । एवं परम गुरवे इदमन्नं ॥ परमेष्ठी गुरवे इदंमन्नं परात्पर गुरवे इदंमन्नं विश्वरुप धराचार्याय वा आदौ ततो त्रयं गुरुं तत: केशवाय इदमन्नं ॥ कृष्णे संकर्षणाय इदमन्नं इति सर्वत्रान्नंत्यागं कृत्वा ॥ ॐ बह्मार्पणं देवता नैवेद्यं आपोरानं ॐ एको विष्णुः । ऊँ, तद्ब्रह्मा ॥ ॐ तद्वायुः । ॐ तदात्मा ॥ ॐ तत्सत्यं ॥ ॐ तत् सर्वं ॥ ॐ तत्पुरोर्नमः ॥ ॐ अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वमूर्तिषु । ॐ त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमिन्द्रस्त्व रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं ब्रह्मत्वं प्रजापतिः ॥ त्वन्तदाप आपोज्योति रसोमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् पञ्च प्राणाहुति' जपित्वा भोजनेषु उपविष्टेषु उपनिषन्मंत्रान् श्रावयेत् तृप्तेषु ॥ ऊं तद्ब्रह्मेत्यनुवाकं जपित्वा उत्तरापोशनोत्तरमाचान्तेषु विशिष्ट तांबूलं

दक्षिणावस्त्रादिभिरभ्यर्च्य: उपविष्टेष्वेव तेषु गुर्वाराधनांगभूतं तीर्थ पूजनं करिष्ये ॥ चतुरस्त्र मण्डले गोमयो पलिप्य तत्र रंगवल्यादिभिरलंकृत्य तन्मण्डले धान्यो परिपादोदकं कलशं स्थाप्य तत्र गंगादि सर्व तीर्थानि भावयित्वा पुरुष सूक्तेन प्रत्य ऋचं तीर्थराजाय नमयित्यं तेन षोडशोपचारै: अभ्यर्च्य ॥ तत्पात्रं शिरसि धृत्वा 'ॐ लोक: , सरस्वत्यायान्त्येष वै देवयानः पन्थास्तमेवान्वारोहन्त्या - क्रोशन्तोयान्त्यवर्ति मेवान्यस्मिन् प्रतिषज्य प्रतिष्ठांग गच्छन्ति यदा दश शतं कुर्वन्त्यथैकमुत्थानं शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुष्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठन्ति ॥ यदा शत सहस्रं कुर्वन्त्यथैकमुत्थानं सहस्र समितो वा असौ लोकोमुमेव लोकमभिजयन्ति यदा येषां प्रमीयेत तदा वाजीयेन्न रथैकमुत्थानं तद्वितीर्थं ॥ इत्यनुवाक शेष: ॥ भीषास्माद्वातः पवने भीषोदेति सूर्यः भीषास्माद् अग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पंचम इति ॥ सैषानन्दस्य मीमांसा भवति ॥ युवास्यात्साधु युवाध्यापकः ॥ आशिष्टो दृढिष्टो बलिष्ठ: ॥ तस्येयं पृथिवी सर्व वित्तस्य पूर्णास्यात् ॥ स एको मानुष आनन्द: ते ये शतं मानुषा आनन्दा ॥ स एको मनुष्य गधर्वाणामानन्द: ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ते ये शतं मनुष्य गन्धर्वाणामानन्दाः स एको देव गन्धर्वाणामानन्दः ॥ स एक: पितृणां चिरलोकलोकानामानन्द: ॥। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ते ये शतं पितृणां चिरलोक लोकानामानन्दा: ॥ स एकः अजान जानां देवानामानन्द: ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ते ये शतमाजानां जानान् देवानामानन्दाः ॥ स एक: कर्म देवानां देवानामानन्द: ये कर्मणा देवानपियन्ति । श्रोत्रियस्य चाकामह तस्य ते ये शतं कर्मदेवानां देवानामानन्दा: ॥ स एको देवानामानन्द:॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ते ये शतं देवानामानन्दाः ॥ स एकः इन्द्रस्यानन्दः ॥ श्रोत्रियस्य चाकामह तस्य ते ये शतं इन्द्रस्यानन्दा: ॥ स एको बृहस्पतेरानन्दः ॥ श्रोत्रियस्य चाकामह तस्य ते ये शतं वृहस्पतेरानन्दाः । स एकः प्रजापतेरानन्दः॥ श्रोत्रियस्य चाकामह तस्य ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः ॥ स एको ब्रह्मण आनन्दा: ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ते ये शतं ब्रह्मण: आनन्द: ॥ स यश्चायं पुरुषे ॥ यश्चा सावादित्ये । स एकः सय एवं वित् अस्माल्लोकात् प्रेत्या ॥ एतन्नमय - मात्मानमुपसंक्रामति ॥ एतं णमयमात्मानमुप संक्रामति ॥ एतं मनोमय - मात्मानमुप संक्रामति ॥ एवं विज्ञानमयमात्मानमुप संक्रामति ॥ एतमानन्दमय मात्मानमुप संक्रामति तदप्येष श्लोको भवति ॥यतोवाचो निवर्तते ॥ अप्राप्य मनसा सहा आनन्दं बह्मणो विद्वान् न विभेति कुलश्चनेति ॥ एतं हवावनतपति । किमहं साधुनाकरवम्। किमहं पापमकरवमिति ॥ सय एवं विद्वाने ते आत्मानं स्पृणुते ॥ उभेद्येवैष एते आत्मानं स्पृणुते ॥ य एवं वेद इत्युपनिषत् ॥ सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यंकर वा वहै तेजस्विनावधीतमस्तु मा द्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ इत्यनुवाक जपित्वा ॥ हरिकीर्तनपुरः सरंस हर्ष नृत्यं च कृत्वा तत्पात्रं पुनर्मण्डले संस्थाप्य उत्तरपूजनं कृत्वा तीर्थ ग्रहणं तत्र मंत्रः ॥

अविद्या मूल शमनं सर्व पाप प्रनाशनम् ॥ गुरोः पादोदकं चित्र संसार भय नाशनम् ॥ 1 ॥
शोषणं पाप पंकस्य दीपनं ज्ञान तेजसा । गुरो पादोदकं चित्रं पुत्रपौत्र प्रवर्धनम् ॥ 2 ॥

श्री अग्रदेवाचार्यजी महाराज (रैवासा)

भक्ति-रस के आचार्य श्री अग्रदेवाचार्यजी का प्रादुर्भाव वि.सं. 1553 में फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को राजस्थान के किसी गांव के ब्राह्मण कुल में हुआ। श्री अग्रदासजी के पदों की भाषा को देखकर उनका राजस्थान प्रान्त में होना सुसंगत है। प्रायः सन्त महात्माओं में आत्मख्याति की कामना नहीं होती इसलिये उनके जन्म समय का निर्णय एक गवेषणा का विषय बन जाता है। इन महापुरुषों के द्वारा देश व समाज को जो दिशा मिली है उसे भुलाया नहीं जा सकता। समाज का यह पुनीत कर्तव्य है कि उनके जीवन सम्बन्धी सामग्री प्रकाश में लायें जिससे समाजोत्थान में सहयोग मिल सके।

श्री भक्त माल के व्याख्याकार श्री रामेश्वरदासजी रामायणी ने श्री अग्रस्वामी का जन्म सम्वत् 1553 का फाल्गुन शुक्ला द्वितीया माना है।

श्री अग्रदासजी अत्यन्त अल्पवय में ही घर छोड़कर जयपुर गालवाश्रम में (गलता) विराजमान श्रीकृष्णदासजी पयोहारीजी की शरण में आ गये। जिस दिन आप श्री गुरुशरणगत हुए उस दिन श्री गुरुदेव इन्हें मंत्रोपदेश देकर उपासना का रहस्य समझाकर गद्गद् हो गये। उस दिन खूब उत्सव मनाया गया। उसी दिन आमेर नरेश पृथ्वीराज जी दर्शनार्थ आये। उन्होंने श्री पयोहारी जी से इस उत्सव के विषय में पूछा। श्री पयोहारी जी ने दिव्य-शिष्य के बारे में बताया। फिर क्या था, राजा के मन्त्रियों ने महोत्सव को भी दिव्य रूप में परिवर्तित कर दिया। मंगल वाद्यों की तुमुल ध्वनि से गगन गूंज उठा। श्री पयोहारी जी ने दशों दिशाओं में भक्तों को निमंत्रण भेजा। उनके संकल्प मात्र से ही सभी गुप्त प्रकट सन्तों के पास निमंत्रण पहुँच गया। श्री पयोहारीजी ने सबका यथोचित सत्कार किया। सब सन्तों ने अग्रदासजी को भक्ति का आशीर्वाद दिया। भक्त माल के रचयिता श्री नाभाजी इन्हीं विभूति के कृपापात्र शिष्य हैं। एक बार श्री अग्रदासजी व श्री कीलदेवाचार्यजी को जयपुर के जंगल में दीन-हीन अन्धे बालक के रूप में श्री नाभाजी मिले, इस अनाथ बालक को देखकर इन महापुरुषों को दया आई। इन्होंने अपने कमण्डल के जल से इन्हें नई ज्योति प्रदान की, आश्रम में लाकर श्री अग्रदासजी ने इनको पंच संस्कारों से संस्कारित किया, तथा इनका नाम नारायणदास रखा। एक समय की बात है कि श्री अग्रदेवाचार्यजी महाराज अपने इष्टदेव की मानसिक अर्चना ध्यान में निमग्न थे। उसी समय उनके एक वणिक शिष्य की नौका नदी के प्रवाह में डूबने लगी तो उसने अपने गुरुदेव

को स्मरण किया। उसे पूर्ण विश्वास व श्रद्धा थी कि गुरुजी में ऐसा अलौकिक प्रभाव है कि वे अपने शिष्य के संकट को दूर से ही अवगत कर उसका निवारण कर सकते हैं। श्री अग्रस्वामीजी को उसकी रक्षा करने का विचार जाग्रत हुआ तो श्री नारायणदासजी ने जो सेवा की सामग्री संचित किये हुए समीप में ही उपस्थित थे निवेदन किया कि गुरुदेव ! उस भक्त की नौका की व्यवस्था दास ने विधिपूर्वक कर दी है। शिष्य की इस सर्वज्ञता से प्रसन्न हो, नाभि (मन) की बात जानने के कारण श्री अग्रदासजी महाराज इनको नाभा कहने लगे।

श्री अग्रदेवाचार्यजी 1570 के अन्त में रैवासा पधारे ऐसा भाटों की बहियों से ज्ञात होता है। श्री अग्रस्वामी चरित्र के आधार पर एक चमत्कारपूर्ण घटना और सामने आती है। श्री अग्रदेवाचार्यजी ने कलि के कुटिल कुचाली भगवत पराङ्ग मुख जीवों का उद्धार करने के लिये एक सन्त मण्डली को लेकर यात्रा के निमित्त निकले। इसी यात्रा प्रकरण में रास्ते में एक सद्ग्रहस्थ वणिक ने एक माह तक सन्तों की सेवा की, लेकिन जब सन्त मण्डली भावी यात्रा के लिए आगे बढ़ी तो उसी समय सेठ के इकलौते पुत्र को विषधर सर्प ने डस लिया। उस समय सर्वत्र करुण-क्रन्दन छा गया। सन्तों के विषय में नाना अनर्गल बातें होने लगी। सेठ श्री अग्रदेवाचार्यजी के चरण पकड़-पकड़ कर रोने लगा। दयार्द्र हो श्री अग्रदेवाचार्यजी ने सन्तों के चरणामृत से उस बालक को जीवित कर दिया।

ऐसी किंवदन्ती है कि इसी यात्रा प्रकरण में श्री अग्रदेवाचार्यजी को श्री जानकीजी का साक्षात्कार हुआ। एक समय यात्रा करते शाम हो गई। आस-पास कोई ग्राम नजर नहीं आ रहा था। घनघोर जंगल में महात्मा लोग क्षुधातुर व पिपासाकुल हो रहे थे, उसी दिन एकादशी का व्रत भी था। सन्तों को दुखित देखकर श्री अग्रदेवाचार्यजी को बहुत दुख हुआ उसी समय उस वीरान जंगल में दूर एक झोंपड़ी में दीपक का प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ। श्री अग्रदेवाचार्यजी ने सन्तों को वहाँ चलने का आदेश दिया। सन्तों ने वहाँ पहुँचकर देखा कि झोपड़ी में एक दिव्य आभायुक्त वृद्धा बैठी हुई थी तथा एक दिव्य सरोवर व बगीचा विद्यमान है। वृद्धा ने सन्तों से जल स्नान के बाद फलाहार सेवन का आग्रह किया। सन्तों ने आग्रह स्वीकार कर फलाहार बनाकर भगवान को निवेदित किया और फिर श्री अग्रदेवाचार्य से फलाहार पाने का आग्रह किया। स्वामीजी ने कहा कि भगवान का प्रसाद उस वृद्धा को देकर आओ। वहाँ जाने पर सन्तों ने देखा कि न वहाँ वृद्धा है न बगीचा है न सरोवर हैं, इस घटना को सुनकर श्री अग्रदेवाचार्यजी को अत्यन्त खेद हुआ, उन्होंने कुछ भी नहीं पाया। माँ जानकी के वियोग में रात्रि भर आँसू बहाते रहे।

भक्त के दुख को माँ कब तक सहन कर सकती थी, वहीं पर भक्त वत्सला माँ जानकी का प्राकट्य हुआ और यह आश्वासन दिया कि मैं रैवासा में सदैव विराजमान रहूँगी। माँ जानकीजी का आश्वासन पा श्री स्वामीजी रैवासा ग्राम में पर्वत की तलहटी में एक पीपल के वृक्ष के पास तपस्या करने लगे। उस समय रैवासा के आस-पास जल का

नितान्त अभाव था। अतः रैवासावासियों ने अपनी व्यथा स्वामीजी से कही, सन्त हृदय "नवनीत समाना" स्वामीजी का हृदय पिघला और अपना चिमटा धरती में धँसाया कि जल उत्ताल तरंगों के साथ निकल आया, वह कुआ आज भी पीठ के पृष्ठ भाग में विद्यमान है। सन्तों की कृपा से आज भी रैवासा ग्राम में पानी आसानी से उपलब्ध हो जाता है।

श्री अग्रस्वामी चरित के आधार पर एक ऐतिहासिक तथ्य और सामने आता है कि तत्कालीन दिल्लीश्वर अकबर बादशाह जब अजमेर की तीर्थ यात्रा पर 20 जनवरी, 1562 को आया था तो श्री अग्रदेवाचार्यजी के सुयश को सुनकर दर्शनार्थ रैवासा आया। उस समय श्री स्वामीजी दातून कर रहे थे। उस समय यवन बादशाह ने स्वयं स्वामीजी से कहा कि हमने सुना है कि यहाँ कोई सिद्ध फकीर रहता है, कृपया हमें बताइये वे कहाँ हैं। श्री स्वामीजी ने कहा उनसे तुम्हारा क्या काम है। बैठो, यहीं मिल जायेंगे। श्री स्वामीजी ने बादशाह को स्वयं के बारे में बताया तो बादशाह ने परीक्षा लेने हेतु कुएँ पर चद्दर बिछा चारों कोनों पर सुपारी रख नमाज पढ़ी। स्वामीजी ने इसे चुनौती मान कपड़े व सुपारी को आधार बता स्वयं निराधार आकाश में बैठ ध्यान लगाया। इस अलौकिकता को देखकर बादशाह बड़ा प्रभावित हुआ और आश्रम की सेवा के लिए बहुत कुछ देने को तैयार हो गया। स्वामीजी ने कुछ नहीं चाहा फिर भी बादशाह ने गौचारण हेतु रैवासा के पूर्वोत्तर में 1600 बीघा जमीन का पट्टा दिया जिसे गायों की गौर कहा जाता था और आगे चलकर यह स्थान गौरिया बना।

श्री अग्रदेवाचार्यजी के शिष्य-प्रशिष्य बड़ी-बड़ी गादियों के प्रवर्तकाचार्य हुए जिनमें श्री नाभादास, तुलसीदास, देवमुरारी, पूर्व बैराठी दिवाकर और मलूकदास प्रमुख आचार्य माने जाते हैं। धीरे-धीरे रैवासा की परम्परा का इतना विकास हुआ कि रामानन्द सम्प्रदाय के 36 द्वारों में 14 द्वार इन्हीं की परम्परा के स्थापित हुए।

श्री अग्रदेवाचार्यजी हिन्दी साहित्य के महान् कवि भी थे। उनके द्वारा लिखित 'अग्रसार' ग्रन्थ था जो आज उपलब्ध नहीं है, फिर भी उपलब्ध पद प्रकाशित हुए हैं। श्री अग्रकृत अष्टयाम, कुण्डलियाँ, ध्यान मन्जरी, रहस्य त्रय आदि ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं।

श्री अग्रदेवाचार्यजी महाराज की श्री वैष्णव समाज में महान् प्रतिष्ठा इनके स्थित काल से ही हो रही थी। श्री झांझूदासजी महाराज (स्थान हरसोली) आपके समकालीन थे। श्री रूपसरजी महाराज ने गुरु परम्परा में लिखा है कि श्री अग्रदेवाचार्य जी गुरुजी की भांति ही महान् योगी थे और रसिक साहित्य के निर्माता भी थे। आपकी स्वरचित 72 कुण्डलियों में से एक का नमूना देखिए-

सदा न फूलै तोरई, सदा न सावन होय।
सदा न साँवन होय, संत जन सदा न आवै।
सदा न रहै सुबुद्धि सदा गोबिन्द जस गावै॥

सदा न पच्छी केलि करै इस तरुवर ऊपर।
सदा न स्याही रहै सफेदी आवे भू पर।
अग्र कहै हरि मिलन कौं तन मन डारो खोय।
सदा न फूले तोरई, सदा न सावन होय॥

अग्रदासजी रचित कुछ भजन -

जानकी नायक सब सुखदायक, गुणगण रूप अपारो।
अग्र अली प्रभु की छवि निरखे, जीवन प्राण हमारो॥
देखो माई रघुनंदन प्रभु आवै॥ टेक॥
उपवन बाग सिकार खेलिकै, चपल तुरंग नचावै॥ १॥

क्रीट मुकुट मुकरुकृत कुण्डल, उर बनमाल सुहावै।
कटि पर लट पट पीत लपेटे, कर गहि बाज उड़ावै॥ २॥

चतुरंगिणी सैन्य संग सोहै, पंचरंग ध्वजा उड़ावै
घुरत निसान भेरि सहनाई, गरद गगन उड़ि जावै॥ ३॥

वंदीजन गन्धर्व गुण गावै, गाय प्रभुहि रिझावै।
जय जयकार करत ब्रह्मादिक इन्द्र पुष्प झरि लावै॥ ४॥

अवधपुरि कुल वधू निहारै, निरखि परम सुख पावै।
मातु कौशल्या करत आरती, अग्रदास बलि जावै॥ ५॥

ॐ श्री देवपुरीजी महादेव का परिचय

कैलाशपति ने कैलाश से हिमालय बद्रीनाथ धाम की ओर प्रस्थान किया। वहाँ दुर्गम पहाड़ों के बीच अपने श्री शम्भू पंच अटल अखाड़े में पहुँचे, वहाँ पर परम तपस्वी, साक्षात् अलख पुरुष श्री अलखपुरीजी महाराज से मिले। दोनों ईश्वरीय विभूतियों का मिलन विश्व के लिए वरदान रूप था। भगवान्शिव ने श्री अलखपुरीजी से कहा कि मैं कुछ समय के लिए संसार में दु:खी जीवों के उद्धार के लिए प्रकट होना चाहता हूँ सो आप आज्ञा देवें। आप तो जगतगुरु हैं, मैं भी गुरु ही मानता हूँ। इस पर महायोगी श्री अलखपुरीजी महाराज ने मधुर मुस्कान के साथ कहा, कि आप तो स्वयं शिव हैं, समर्थ हैं, सर्वशक्तिमान हैं, जो चाहे सो कर सकते हैं, आप देवाधिदेव महादेव हैं। आज से आपका नाम श्री देवपुरीजी महादेव होगा।

(जैसा कि श्री महाप्रभुजी ने अपने "अनुभव प्रकाश" में पृष्ठ नं. 11-12 पर लिखा है।)

चौपाई—

श्री अलखपुरीजी अवधूत अनादि। अटल अखाड़े अनहद गादी।।
उन मून सेव श्री देवपुरीजी साजे। ज्ञान वैराग्य दियो है ताजे।।

दोहा—

हंस अनादि आत्मा श्री अलखपुरीसा निर्वाण।
श्री देवपुरीजी महादेव श्री दीप हरि दर्शन जाण।

उसके बाद श्री देवपुरीजी महादेव राजस्थान के आबू पर्वत के लिए प्रस्थान कर गये। वहाँ पर अदृश्य रूप में रहने लगे। उस समय भारत में अंग्रेजों के संरक्षण में राजाओं का राज था।

प्रकाम्य सिद्धि का चमत्कार

स्वतन्त्रता से पूर्व राजाओं के शासनकाल में माउन्ट आबू में एक अंग्रेज रेजीमेण्ट आफीसर रहा करता था। वहाँ पर वह एक हिन्दू धर्म का कट्टर विरोधी अंग्रेज रेजीमेण्ट बनकर आया था। एक दिन वह संध्या को नक्की झील (तालाब) पर टहलने आया। उस समय झील के किनारे श्री दूलेश्वर महादेव के मन्दिर में बाजों के साथ आरती तथा पूजा हो रही थी।

उस अंग्रेज को यह सब देखकर क्रोध आया। उसने वहाँ के साधू तथा ब्राह्मणों को एकत्रित कर डांटते हुए कहा, "तुम लोग ये शोर-शराबा क्यों कर रहे हो? क्या तुम्हारा भगवान्सो गया है या बहरा हो गया है? तुम इन बाजों को जोर-जोर से पीटकर शहर की शान्ति भंग कर रहे हो, इसलिए मैं तुम्हें चेतावनी दे रहा हूँ कि यह सब ढकोसला बन्द कर दो। यदि वास्तव में तुम्हारे भगवान्शिव इन बाजों से प्रसन्न होते हैं तो स्वयं मुझे कहें कि इन्हें बजाने दो। तभी मैं तुम्हें यह सब कुछ करने की आज्ञा दे सकता हूँ, अन्यथा मैं तुम्हें बाजे बजाने की आज्ञा कभी नहीं दूंगा। जो कोई मेरी आज्ञा के बिना बाजा बजायेगा तो मैं उन्हें दण्ड दूंगा।" ऐसा कहकर बहुत से साधुओं को जेल में डाल दिया।

मूर्ख अंग्रेज अफसर के इस ऐलान से सभी साधू ब्राह्मण चिन्ताग्रस्त हो गये। अंग्रेजों का शासन होने के कारण वे उनका विरोध भी नहीं कर सकते थे। सभी सन्तों व ब्राह्मणों ने मन ही मन हरि स्मरण किया, "हे कृपानिधान कैलाशपति, आप स्वयं जब तक इस अंग्रेज अफसर को बाजा (नगाड़े, झालर आदि) बजाने का आदेश नहीं देंगे तब तक हम लोग अन्न, जल ग्रहण नहीं करेंगे। यह हमारा दृढ़ संकल्प है।" साधू-सन्तों के इस दृढ़ संकल्प का पता जब उस अंग्रेज अफसर को चला तब उसने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि इन लाल वस्त्रधारी पादरियों (साधुओं) को विष देकर समाप्त कर दो। (ताकि न रहे बांस न बजे बांसुरी)। उस समय आबू के गहन पर्वतों में भगवान्श्री देवपुरीजी महादेव अदृश्य रूप में विराजते थे और कभी-कभी गौ सेवार्थ प्रकट होते थे। उस समय किसी ग्वाले की गायें चराते हुए श्री देवपुरीजी महादेव को साधुओं की वेदना-युक्त आवाजें सुनायी पड़ीं। यह पुकारें साधुओं व भक्तों की थी आपने पुकार सुनते ही दिव्य दृष्टि से देखा कि साधू एवं ब्राह्मण भक्त जन दो-तीन दिन से भूखे व प्यासे अनशन पर बैठे हैं। वह जेल में उनसे चक्कियाँ चलवाते हैं और दु:खी व दीन भाव से मुझे पुकार रहे हैं एवम् साधु, ब्राह्मणों को एक अंग्रेज अफसर विष तेजाब देकर मारना चाहता है, मेरे बिना उनकी रक्षा कौन करेगा? मुझे तत्काल वहाँ पहुँचना चाहिये, उनको बचाना चाहिए, ताकि देवपुरीजी महादेव की अद् भुत शक्ति का आभास उस अंग्रेज अफसर को हो सके, जो कि अज्ञानवश ऐसा कर रहा है। उसको वहाँ चलकर ज्ञान देना चाहिए। उस समय गायों का ग्वाला वहाँ नहीं था। श्री देवपुरीजी महादेव ने ॐकार ध्वनि से चार सफेद शेरों को बुलाया। तत्काल चारों शेर वहाँ आ गये व सात परिक्रमा देकर, सिर झुकाकर आपके समक्ष दूर-दूर खड़े हो गये और देवपुरीजी महादेव की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। आपने फरमाया कि गायों का पहरा करों वो कहीं चली न जायें। जैसे ही शेरों ने अपने स्वामी की आज्ञा पायी तत्काल चारों शेर गायों की सुरक्षार्थ चारों तरफ दूर-दूर खड़े हो गये। उस वक्त अचानक ही आबू के पर्वतों से स्वयं शिव योगीराज श्री देवपुरीजी महादेव वहाँ पर प्रकट हो गये। योगीराज सीधे ही उस अंग्रेज अफसर के बंगले पर गये। उन्होंने गर्जना भरे स्वर में उस अंग्रेज अफसर को ललकारा, "अरे ओ अंग्रेज अफसर बाहर आकर देख। मैं एक लाल वस्त्रधारी पादरी तुम्हारे बंगले पर आ गया हूँ, अब लाओ सब तुम्हारे जहर व तेजाब की बोतल।"

योगीराज की इस ललकार से एक बार तो उस अंग्रेज अफसर के पाँवों के नीचे से जमीन खिसकने लगी। पर उसने स्थिति को संभालते हुए गुरुदेव के समक्ष तेजाब की बोतल रख दी। शिव योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज ने बोतल उठाकर एक ही घूंट में खाली कर दी। उनके शरीर में उसका कोई भी असर नहीं हुआ। योगीराज बोले, "तुम्हारे पास और कितनी बोतलें हैं? मेरा नशा अधूरा है। शीघ्र बोतलें लाओ।" अंग्रेज अफसर एक-एक कर सात बोतलें गुरुदेव के हाथों में थमाता/पकड़ाता रहा और गुरुदेव एक के बाद एक सभी बोतलें खाली करते रहे। तब योगीराज ने तेजाब की समस्त बोतलें खाली कर डालीं। पूरा तेजाब पी गए तब अंग्रेज अफसर आश्चर्यचकित रह गया।

इस अद्भुत लीला से वहाँ खड़े सभी लोग दंग रह गये। तब उस अंग्रेज अफसर ने हाथ जोड़कर श्री योगीराज देवपुरीजी महादेव से निवेदन किया कि हे देव, अब हमारे पास तेजाब की बोतलें नहीं हैं। अंग्रेज के मना करने पर योगीराज ने उन सातों बोतलों को तोड़कर, काँच को भी पापड़ की तरह चबाकर खा लिया और अपने प्राणों को ब्रह्म रन्ध्र में चढ़ा दिया। उस अंग्रेज अफसर ने देखा कि योगीराज की सांस एवं नाड़ी बन्द हो गयी है। निश्चित ही यह पादरी मृत्यु लोक को प्राप्त हो गया है। ऐसा सोच कर उस अंग्रेज अफसर ने अपने नौकरों को बुलाकर योगीराज को बाहर करने का आदेश दिया। आदेश पाकर नौकर धीरे-धीरे योगीराज की तरफ बढ़ने लगे। तभी अचानक योगीराज मुस्कुराते हुए बैठ गये। मधुर मुस्कुराहट से अंग्रेज की तरफ देखते हुए बोले, "कौन मर गया? मैं तो आराम कर रहा था।" ऐसा कहते हुए अंग्रेज अफसर का हाथ पकड़कर योगीराज उसे नक्की झील के अथाह जल की सतह पर घसीट कर ले गये। महायोगीराज तो जल की सतह पर भी वैसे ही चल रहे थे, जैसे पृथ्वी पर चल रहे हों, परन्तु वह अंग्रेज कभी डूबता कभी तैरता। इस तरह उसकी विचित्र स्थिति थी। अथाह पानी के बीच ले जाकर उस अंग्रेज अफसर से कहा, "बोल तू क्या चाहता है? तू इन साधुओं को तंग करता है। इन्हें कहता है कि स्वयं शिव के आकर कहने पर ही पूजा में बाजे, नगाड़े इत्यादि बजाने की आज्ञा दूंगा। मैं स्वयं शिव तेरे समक्ष हूँ, अब तू क्या चाहता है?" तब उस अंग्रेज ने गिड़गिड़ाते हुए पुकारा कि, "श्री देवपुरीजी महादेव बचाओ।" इस प्रकार पाँच बार कहते ही श्री देवपुरीजी महादेव ने मधुर मुस्कुराहट से कहा यही डूबने से बचने का सही मंत्र है—श्री देवपुरीजी महादेव बचाओ। इसी मंत्र से भवसागर के किसी दु:ख सागर में डूबते बच जायेगा। यह विश्व के वरदान अमृत वचन सुनते ही अंग्रेज धन्य हो गया और वह श्वासों श्वास इसी मंत्र की धुन में मस्त हो गया और महातपस्वी के कर-कमल के स्पर्श से ही शुद्ध पावन हो गया।

उसका जीवन बदल गया जैसे पारस के छूने से लोहा सोना हो जाता है, वैसे ही अंग्रेज के अन्त:करण में दिव्य विचार प्रकट हो गये और अंग्रेज ने श्री देवपुरीजी महादेव से वरदान मांगा, "हे दयाल! हम लोगों में विद्या, कला, अन्न, धन आदि की कोई कमी नहीं है, लेकिन सच्चा योग व ब्रह्म ज्ञान, सच्ची शान्ति आदि का अभाव है। इसलिए आप हम अंग्रेजों के लिए कृपा कर पधारें, या अपने दरबार का सच्चा सैनिक एवं दिव्य पुरुष एवं महान् सन्त हमारे देशों में भेजने

की कृपा करें।" अंग्रेज की यह प्रार्थना सुनकर सकल कामना सिद्धि वरदाता, करुणामय कैलाशपति ने कहा—"तथास्तु" ऐसा ही होगा और कुछ समय बाद साक्षात् परमात्मा अमृत सागर भगवान् श्री दीपनारायण महाप्रभु का अवतार होगा। वह आप लोगों के लिए एवम् सम्पूर्ण विश्व के लिए एक महान्ज्योतिर्मय दिव्य पुरुष सप्तऋषियों में से एक ऋषि अथवा अन्य कोई महान् विभूति सत्यलोक से पृथ्वी पर उतारेगा (प्रकट होगा) वही दिव्य पुरुष विश्व दीप परमात्मा अमृत मय दिव्य शांति संदेश को योग वेदान्त द्वारा समस्त विश्व को शान्ति का सन्देश देने आयेंगे। उनके साथ मैं अदृश्य रूप से रहूंगा। विश्व दीप का प्रकाश सर्वत्र अन्दर व बाहर परिपूर्ण ही है, लेकिन उसकी वाणी में विशेष रूप से प्रकट रहेगा जो भ्रम अंधेरे को दूर करेगा और आत्मप्रकाश व आत्म शान्ति प्रदान करेंगे। ऐसा वरदान देकर भगवान्शंकर ने उस अंग्रेज को किनारे पर छोड़ दिया। सबसे पहले उस अंग्रेज ने क्षमा मांगते हुए कुछ भेंट देकर साधुओं को जेल से विदा किया। हजारों भक्त , साधू, ब्राह्मण उस नक्की झील के किनारे पहले से ही खड़े थे। उन सभी ने करुणानिधान कैलाशपति शिव की जय-जयकार की ध्वनि-नाद किया एवम् हर्षित हुए। सभी भक्त एवम् साधूजन महाशिव योगीराज श्री देवपुरीजी के चरण स्पर्श करना चाहते थे, परन्तु योगीराज तो झील की सतह पर से ही दर्शन एवं आशीर्वाद देते हुए अदृश्य हो गये, जहाँ गायें थीं, वहाँ जाकर शेरों से कहा, "तुम्हारी सेवा पूर्ण हो गई है, अपने-अपने जगह चले जाओ।" तब शेर सिर झुका के चले गये।

(प्रकाम्य सिद्धि द्वारा योगी पानी की सतह पर चल सकता है। इस प्रकरण में योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज की प्राकाम्य सिद्धि को ही बताया गया है।)

अघौरी साधुओं को सन्मार्ग पर लाना

आबू पर्वत की कन्दराओं में पहुँचना बिरले व्यक्तियों की ही सामर्थ्य की बात मानी जाती है। योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज ने अणिमा सिद्धि द्वारा छोटे बालक का रूप धारण किया। उसी समय एक गुफा में से चार अघौरी साधु निकले। इस छोटे बालक को देखकर वे कहने लगे कि आज का मुहूर्त बहुत ही शुभ है, आज तो अपना भोजन स्वयं अपने पास आ रहा है। ऐसा विचार कर वे उस बालक के पास पहुँचे और उसे पकड़ने लगे। साधुओं के विचित्र व्यवहार को देखकर बालक ने कहा, "आप लोग क्या कर रहे हैं? मुझ जैसे बालकों पर तो आप जैसे साधु-सन्तों की कृपा होनी चाहिये।" इस पर अघौरी साधु बोले, "हम कृपा नहीं जानते हैं, हम तो तुम्हें पकड़ कर खायेंगे।" इस पर बालक हँसते हुए बोला, "आप मुझे नहीं खा सकते।"

"क्यों नहीं खा सकते? क्या तुम भगवान् हो?" साधुओं ने व्यंग करते हुए पूछा तो उस बालक ने जवाब दिया, "हाँ मैं राम हूँ।" बोलो तुम लोगों को क्या चाहिये? बालक के इस आत्मविश्वासपूर्ण उत्तर से एक बार तो साधु स्वयं घबरा गये।

फिर भी संभलते हुए उन्होंने पूछा, "अगर तुम राम हो तो हम तुम्हारी परीक्षा लेंगे। अगर इस पहाड़ और झाड़ी में से अपने आप ही 'राम-राम' की ध्वनि निकले तो हम तुम्हें राम मान लेंगे।" साधुओं की इस बात को मानते हुए उस बालक ने झाड़ी और पहाड़ की ओर देखा और उनसे कहने लगा, "हे पहाड़ और झाड़ी आप जोर से बोलिए 'राम-राम'। तभी एक चमत्कार हुआ और चारों ओर से ध्वनियाँ एवम् प्रतिध्वनियाँ सुनाई देने लगीं और "राम-राम" से सारा सौरमण्डल गूँजने लगा। इस लीला को देखकर चारो अघौरी समझ गये यह कोई महानूईश्वरीय विभूति है। हम चारों पतितों को पावन करने के लिए ही प्रकट हुए हैं। आज का दिन हमारे लिए बहुत ही शुभ है। ऐसा विचार करते हुए चारों अघौरी साधु उस बालक के चरणों में गिर पड़े। वह बालक अपनी महिमा सिद्धि द्वारा पुन: योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज के रूप में परिवर्तित हो गये। अघौरी साधु विस्मयजनक स्थिति में आ गये। उन्होंने योगीराज को साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया और निवेदन करने लगे, "हे प्रभु! हम लोग भटक रहे हैं, आप कृपा करके सत्य मार्ग बतलाइये।" साधुओं की इस प्रार्थना को सुनकर योगीराज ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "आप लोग समस्त पाप कार्य छोड़कर गिरनार पहाड़ में जूनागढ़ चले जावें, वहाँ आपको एक पवित्र गुफा मिल जायेगी। उस गुफा में आसन लगाकर ॐकार मंत्र सहित चिन्तन कीजियेगा। तब आप लोगों को आत्मशक्ति मिलेगी।" ॐकार की जप की विधि योगीराज साधुओं को समझाकर स्वयं अचानक ऊंचे पहाड़ पर चढ़ गये।

इसके पश्चात अघौरी साधू परमहितकारी, परम कृपासागर का वचन शिरोधार्य करके गिरनार पहाड़ पर चले गये। वहाँ पर योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज की कृपा से पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए, वे थोड़े समय में ही सिद्धि पुरुष हो गये।

(लघिमा सिद्धि के द्वारा रूई के समान हल्के होकर चाहे जहाँ उड़ सकते हैं।)

परम योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज ने विचार किया कि संसार में भूले-भटके जीवों को सत्य मार्ग दिखलाना अति आवश्यक है। ऐसा विचार कर आप माउण्ट आबू से रवाना होकर अजमेर के पास नसीराबाद में, जहाँ अंग्रेजों की छावनी थी, पधारे। वहाँ पर अंग्रेजों को आपने अनेकानेक चमत्कार दिखलाये। इन आश्चर्यजनक चमत्कारों से प्रभावित होकर अंग्रेजों ने योगीराज को रुपयों की एक थैली भेंट की। कुछ समय वहाँ पर आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने के बाद आप राजस्थान के सीकर जिले में कैलाश गाँव में पधारे।

गाँव कैलाश में आश्रम की स्थापना

योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज ने कैलाश पहुँचकर गाँव वालों के समक्ष आश्रम बनाने की इच्छा प्रकट की। गाँव वालों ने अपना सौभाग्य माना। समस्त गाँव वाले योगीराज के पास आये और कहने लगे, "गुरुदेव, यह तो हमारा

अहोभाग्य है कि आपने हमारे गाँव में आश्रम बनाने की इच्छा प्रकट की। हम लोग हाथ जोड़कर निवेदन करते हैं कि आप आज्ञा करें। आपके आदेशानुसार हम व्यवस्था कर देंगे। हमें सेवा करने का शुभ अवसर प्रदान करें।" योगीराज ने वहाँ पर अति सुन्दर आश्रम बनाया। नसीराबाद छावनी से योगीराज जो कुछ भी धन लेकर आये थे वह सम्पूर्ण धन उस आश्रम में लगा दिया। यह रमणीक आश्रम दो मंजिल का बना। वहाँ के प्रसिद्ध कारीगरों ने इसे बनाकर अपनी कला का अति उत्तम संगम प्रस्तुत किया। चारों तरफ से हवादार, प्रकाशयुक्त बने इस आश्रम के बीच में वेद विधियुक्त एक विशाल तथा सुन्दर हवन कुण्ड स्थापित किया जिसमें अखण्ड हवन चलता ही रहता था। उस आश्रम में स्वयं शिवरूप योगीराज ने रामायण की कथा आरम्भ की। आपकी कथा अतिरोचक व मनोहर होती थी।

गाँवों के हजारों नर नारी कथा सुनने आते थे। आश्रम में हजारों आदमियों का भांति-भांति का भोजन बनता था, परन्तु किसी को यह ज्ञात नहीं होता था कि इस भोजन के लिए सामग्री कहाँ से आती है? ऐसा भी कहा जाता है कि साक्षात् रिद्धि-सिद्धि तथा कुबेर योगीराज की सेवा में तत्पर रहते। लोगों की भीड़ का ताँता बना ही रहता था। इस प्रकार लगातार तीन वर्ष तक ज्ञानामृत का आनन्द उस आश्रम में योगीराज द्वारा बरसता ही रहा। अब आपके मन में विचार आया कि ये सब लोग मेरे पास मुक्ति व आत्मज्ञान के लिए नहीं आते हैं। ये तो केवल मुफ्त का भोजन करने और राग-रागिनी सुनने ही आते हैं। उन्होंने देखा कि भैंस के आगे भागवत् पढ़ने से कोई फायदा नहीं। ऐसा विचार कर योगीराज ने एक दिन आश्रम से बाहर निकलकर जोर-जोर से आवाज लगानी शुरू कर दी, "सभी भक्त गण आश्रम से बाहर निकलो। देखो आश्रम की ऊपर वाली मंजिल गिरने वाली है।" तभी योगीराज ने आश्रम की ऊपर वाली मंजिल की ओर त्राटक दृष्टि से देखा और देखते ही देखते सबके सामने आश्रम का भाग फटकर गिरने लगा तथा थोड़ी ही देर में मलबे के ढेर के रूप में परिवर्तित हो गया। तत्पश्चात् आपने एक ऐसी आवाज लगाई, जिसको सुनकर हर प्रकार के विषैले सर्प वहाँ पर एकत्रित हो गये। योगीराज इन विषैले सर्पों को पकड़कर मनुष्यों पर फेंकने लगे। इस विचित्र लीला से लोग भयभीत होकर वहाँ से भागने लगे। लोग कहने लगे "महात्माजी को अचानक यह क्या हो गया? कहीं ये पागल तो नहीं हो गये।" ऐसा कहते-कहते सभी अपने-अपने घर चले गये। इतनी बड़ी घटना हो जाने के पश्चात् भी किसी को शारीरिक चोटें नहीं आयी।

(यह आश्रम श्री कैलाश गाँव में एक खण्डहर के रूप में मौजूद था जिसका पुनर्निर्माण विश्वगुरु परमहंस श्री स्वामी महेश्वरानन्दजी द्वारा सन् १९९० में करवा दिया गया है।)

नाथ योगी को शान्ति प्रदान करना

आश्रम के पीछे की ओर एक नाथ योगी नवरात्रि अनुष्ठान कर रहा था। वह देवी की मूर्ति के आगे जप कर रहा था। उसके पास जाकर श्री योगीराज ने कहा, "हे नाथ बाबा, तुमने कान तो झड़वाये, परन्तु मन माया से नहीं छुड़ा सके। इस

माया रूपी देवी से तू क्या चाहता है? जो चाहे सो मुझ से मांग ले। मैं तुम्हें सर्वस्व दे सकता हूँ।" तब नाथजी महाराज इन अद्भुत वचनों को सुनकर दंग रह गये। उन्होंने चुपचाप वहाँ से प्रणाम करके नौ-दो ग्यारह होने में अपना सार समझा। किसी भी व्यक्ति को पता नहीं चला कि नाथजी महाराज कहाँ चले गये?

इस घटना के तीन दिन पश्चात् योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज ने प्रकाश्य सिद्धि (दिव्य दृष्टि) द्वारा यह जान लिया कि नाथ बाबा लोहार्गल तीर्थ मेले में उदास मन से बैठे हैं। सिद्धि बल से ही श्री योगीराज अचानक ही नाथ बाबा के समक्ष प्रकट हो गये। उन्होंने नाथ बाबा को आशीर्वाद दिया, "तुम चिन्ता मत करो। मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ। जब-जब भी तुम इच्छा करोगे तब-तब मेरे दर्शन पाओगे।" योगीराज के इस आशीर्वाद से नाथ बाबा अति प्रसन्न हुए और उनके चरणों में गिर पड़े। ज्योंही नाथ बाबा ने ऊपर दृष्टि उठायी तो वहाँ योगीराज को नहीं पाया। योगीराज तो अदृश्य हो गये थे। इस लीला से खुश होकर नाथजी महाराज ने अपने मन में योगीराज की मूर्ति धारण कर ली, जिससे उन्हें अखण्ड शान्ति प्राप्त हुई।

कुत्तों और सर्पों को नियन्त्रण में रखना

परमसिद्ध योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज, गाँव कैलाश पधारे वहाँ पर आप अवधूत अवस्था में रहने लगे। आप हर वक्त पाँच-सात कुत्तों व सात-आठ सर्पों से घिरे रहते थे। मनुष्यों को अपने नजदीक भी नहीं आने देते थे। योगीराज अपने कुत्तों को 'रईस' नाम से पुकारते थे। ऐसा भी कहा जाता है कि योगीराज इन कुत्तों को अपना तकिया बनाकर सोते थे। यहाँ तक कि बैठने के लिए सहारा भी कुत्तों का ही लिया करते थे। योगीराज की आज्ञा पाकर ही कुत्ते अपनी दिनचर्या बनाते थे। योगीराज की आज्ञा पाकर ये कुत्ते शिकार भी कर लिया करते थे। जब कभी योगीराज का मन कुछ समय मनोरंजन करने का होता तो आप कुत्तों के साथ विचित्र लीला करते थे। कभी-कभी किसी एक कुत्ते के ऊपर बहुत से कपड़ों को लोहे के तारों से बांधकर उस पर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा देते थे। आग की लपटों युक्त उस कुत्ते को भागते हुए देखकर आप ठहाका लगाते और हंसते हुए कहते, "देखो लंका जल रही है।" उस दृश्य से लोग उस कुत्ते के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कहते थे, "यह साधु इस निर्दोष कुत्ते को जला रहा है।" लेकिन लोगों को क्या मालूम कि इस कुत्ते का तो बाल भी नहीं जल रहा है। कभी-कभी योगीराज बीहड़ जंगलों में जाकर ऐसी आवाज लगाते कि सुनकर सभी सर्प इकट्ठे हो जाते थे और अपने गुरुदेव के वचनामृत सुनने के लिए फन फैलाकर और कुण्डली मारकर बैठ जाते। उस समय आप इन सर्पों को निर्देश देते कि अमुक-अमुक सर्प को आश्रम की इस-इस सीमा में घूमने की छूट है। आप अपनी सीमा का उल्लंघन न करें। अगर कोई सीमा का उल्लंघन करेगा तो उसे दण्ड मिलेगा। ऐसा कह करके आप स्वयं बाहर चले जाते। कभी-कभी कोई सर्प अपनी सीमा का उल्लंघन करता तो आप उन्हें कठोर दण्ड देते। दो सर्पों की पूंछों को आपस में सुई और धागे से सी देते थे। उन सर्पों की कुण्डलियां बनाते देख आप उन्हें सुधारने की लिए आशिर्वचन

कहते। दोषी सर्प योगीराज से दया की भीख मांगते, तब योगीराज उन सर्पों को छोड़ देते। उन्हें समझाते थे कि वे भविष्य में इस गलती को दोहराने का साहस नहीं करें।

अद्भुत घुड़सवार

श्री योगीराज के पास एक अच्छा घोड़ा था। योगीराज स्वयं एक अच्छे घुड़सवार थे। आप अपने घोड़े को बहुत तेज दौड़ाते थे। आप दौड़ाते हुए घोड़े पर कई कलाबाजियां करते थे। बारी-बारी से चढ़ते एवम् उतरते, दौड़ते हुए घोड़े पर खड़ा होना। घोड़े के पेट के नीचे होकर पुन: पीठ पर आना आदि उनके लिए सहज आसानी थी। कई बार योगीराज जब घोड़े की पीठ के नीचे छिप जाते थे, तब लोग आश्चर्य करते कि घोड़ा, बिना सवार के जा रहा है। बिना सवार का घोड़ा समझकर लोग उसे पकड़ने दौड़ते। इतने में अचानक ही योगीराज पीठ पर बैठ जाते। लोग इस अद्भुत कलाबाजी से दांतों तले अंगुली दबाया करते थे। कई बार आप घोड़े को आज्ञा देते कि जाओ इन-इन खेतों में चरकर इस समय तक वापस आ जाना। घोड़ा योगीराज के आदेश का एक मनुष्य की भांति पालन करता।

लड़की को जीवनदान

एक बार गाँव कैलाश में मीणा जाति के लोगों में विवाह था। विवाह के उत्सव में सभी मग्न थे। तभी अचानक हर्ष का वातावरण शोक में बदल गया। वहाँ पर "खेती" नामक लड़की की मौत हो गयी। शोकाकुल वातावरण में यहाँ उपस्थित सभी लोग रोने लगे। दु:ख की इस घड़ी में वहाँ पर परम पूजनीय योगीराज पधारे। और वहाँ पर सभी लोगों को बिलखते देखकर कारण जानना चाहा।

जब लोगों ने गुरुदेव का ध्यान उस मृत लड़की की ओर किया तब योगीराज उस मृत बाला के पास गये। कुछ समय तक मौन रहने के बाद योगीराज बोले, "यह लड़की मृत नहीं है। आप लोग व्यर्थ ही रो रहे हैं।" ऐसा कहकर योगीराज ने उस लड़की के कान में कुछ कहा। थोड़ी देर बाद लड़की अंगड़ाई लेते हुए बैठ गयी। यह अद्भुत चमत्कार देखकर वहाँ पर उपस्थित सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। सभी ने योगीराज की जय-जयकार से आसमान गुंजा दिया।

चिड़ियों को जीवनदान

एक शिकारी बहुत सी चिड़ियों का शिकार करके, उनको टोकरी में भरकर आश्रम (गाँव-कैलाश) के समीप होकर अपने घर लौट रहा था। तभी उस शिकारी को देखकर योगीराज ने उसे रोका और उससे पूछा, "इस टोकरी में क्या है? मुझे दे दो मैं देखना चाहता हूँ।" योगीराज की आज्ञा का पालन करते हुए शिकारी ने टोकरी को योगीराज के समक्ष रख दिया। योगीराज ने टोकरी को हाथ में लेकर फुटबाल की भांति एक किक (लात) मारी कि देखते-देखते सभी चिड़ियाएं फुर्र-फुर्र करके उड़ गयीं।

शिकारी ने सोचा यह सब कैसे हुआ? सभी मृत चिड़ियाएं कैसे उड़ गयीं। वह इस चमत्कार को योगीराज की कृपा जानकर उनके चरणों में गिर गया। अपने दुष्कर्मों के लिए क्षमा याचना करने लगा। उसने मन में हिंसा से सदैव दूर रहने का संकल्प किया और अपने शेष जीवन में शिकार से सदा के लिए मुंह मोड़ लिया।

गाँव जालूड़ में कुआं खुदवाना

योगीराज देवपुरीजी महाराज कैलाश आश्रम में विराजमान थे। तब किसी ने आकर प्रार्थना की, "हे कृपा सिन्धु! आपके पड़ौस के गाँव जालूड़ में पीने का पानी नहीं है। मनुष्य व पशु-पक्षी प्यासे मर रहे हैं। और आसपास के कुओं में खारा पानी है।"

लोगों की समस्या सुनकर योगीराज गाँव जालूड़ पहुँचे। आपके साथ कुत्तों एवम् सर्पों की फौज भी थी। योगीराज ने गाँव के बाहर एक वट वृक्ष के नीचे आसन लगाया। गाँव के लोग योगीराज के शुभागमन पर बहुत प्रसन्न हुए। सभी वर्गों के लोग आपके समक्ष उपस्थित हुए और अपनी समस्या योगीराज को बताई। योगीराज ने उनकी समस्या सुनकर आशीर्वाद देते हुए बताया कि "शीघ्र ही आप एक कुआं खोदना प्रारम्भ करो। तीन दिन के अन्दर यहाँ मीठे पानी की अथाह धारायें फूट पड़ेंगी।" ऐसा कहते हुए योगीराज एक फीता लेकर कुएं के लिए जमीन नापकर बताने लगे। फिर क्या था? देखते ही देखते अनेक लोग इस कार्य में जुट गये। मात्र चौबीस घण्टों में एक गहरा कुआं खुद गया था। देखते ही देखते उसमें अमृत तुल्य मीठा पानी निकल आया। मीठा पानी देखकर लोग खुशी के साथ योगीराज की जय-जयकार करने लगे। इसके पश्चातयोगीराज ने आस-पास के गाँवों से कुशल कारीगरों, मिस्त्रियों एवं मजदूरों को बुलाकर उस कुएं को पक्का बनवा दिया। वह कुआं अब भी मौजूद है।

अक्षय तृतीया को विवाह का आशीर्वाद

योगीराज प्रात:काल जंगल की ओर जा रहे थे। उसी गाँव (कैलाश) के एक हरिजन ने उन्हें देखकर प्रणाम किया। योगीराज ने उस हरिजन को आशीर्वाद दिया, "आनन्द करो बच्चा, इस अक्षय तृतीया को तुम्हारा विवाह हो जायेगा।" यह वचन सुनकर हरिजन स्तब्ध रह गया। हरिजन ने कहा, "यह कैसा आशीर्वाद दे दिया? गुरुदेव मैं तो शादीशुदा हूँ, मेरे पाँच बच्चे हैं और दूसरी शादी करने की इच्छा भी नहीं है। फिर आपका यह आशीर्वाद.....?"

"मैं जानता हूँ बच्चा। इस समय जो तेरी अर्द्धांगिनी है, उसका जीवन परसों प्रात: चार बजे तक ही है। फिर वह तुम्हें व तुम्हारे बच्चों को छोड़कर स्वर्ग चली जायेगी। अत: तुम्हारे परिवार की भलाई के लिए ही मैंने यह आशीर्वाद तुम्हें दिया है। " योगीराज ने आत्मविश्वासपूर्वक उस हरिजन को पूरी स्थिति से अवगत कराया। योगीराज के वचनों के

अनुसार ही उस हरिजन की पत्नी पूरे परिवार को रोता-बिलखता छोड़ स्वर्ग में चली गयी। पूरे परिवार में शोक का वातावरण हो गया। कुछ ही दिनों के पश्चात ठीक अक्षय तृतीया को उस हरिजन का पुन: विवाह हो गया। यह चमत्कार देखकर वह हरिजन योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज से बहुत प्रभावित हुआ। इसके बाद वह रोज प्रात: योगीराज के आश्रम जाता ही रहता था।

भगवान्शंकर से महाप्रभुजी का दीक्षा ग्रहण करना

कुछ समय बाद परम योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज अपने कुत्तों, गायों, भेड़, बकरियों, सर्पों व घोड़े इत्यादि पालतू जानवरों को लेकर बड़ी खाटू के पहाड़ों में विराजमान हो गये।

बड़ी खाटू व छोटी खाटू की प्रजा और राजा आदि योगीराज के दर्शनार्थ पहाड़ों पर आने लगे। सभी लोगों को योगीराज के व्यक्तित्व से भय लगता था, अत: सभी लोग केवल दर्शन करके चले जाते थे। कोई भी व्यक्ति वहाँ पर ज्यादा देर तक नहीं रुकता था।

भगवान्श्री दीपनारायण महाप्रभुजी अपनी गायों को चराते हुए उस स्थान पर पहुँच गये, जहाँ पर स्वयं शिव एवम् योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज समाधि में लीन थे। महाप्रभुजी ने उनको साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया।

उस समय योगीराज ने आँखें खोली और मधुर मुस्कान भरी दृष्टि से महाप्रभुजी की ओर देखा। कुछ समय के लिए दोनों विभूतियों की नजरें मिलीं। आंखों ही आंखों में मौन वार्तालाप हुआ। एक जोड़ी आंखें श्रद्धा से नम थीं तो दूसरी जोड़ी आंखें कुछ देने के लिए आतुर थी। उस अलौकिक छवि का वर्णन शब्दों में करने मैं असमर्थ हूँ।

श्री महाप्रभुजी ने योगीराज की सात बार परिक्रमा की और नम्र भाव से परम योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज के समक्ष विराजमान होकर सुमधुर राग में स्तुति करने लगे-

ॐ नमस्ते श्री गुरु, देवपुरी दयालम्।
निजानन्द, आनन्द, माया के आलम्॥

शरीरं अखंडं हरि रूप जासे।
अतीतं अनादि, निराकार भासे॥

अगम अजोनी, अपार अलिप्तम्।
स्वरूपम् सुशुद्धम्, सदा योगी जप्तम्॥

नमो सर्वव्यापी, गुणातीत देवा।
सदा स्वामी दीप, करे चरण सेवा॥

उक्त स्तुति सुनकर महायोगीराज श्री देवपुरीजी महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहने लगे, "हे विश्व दीप! मैं और तुम एक हैं। मात्र शरीर अलग-अलग हैं। तुम स्वयं शुद्ध स्वरूप, सच्चिदानन्द मूर्ति हो, इतने पर भी सत्य सनातन धर्म मर्यादा का पालन करना महापुरुषों का धर्म है। ऐसा कहते हुए पूर्ण कृपा एवम् आशीर्वाद युक्त गुरुदेव अपना वृहद्हस्तकमल श्री महाप्रभुजी के मस्तक पर धरा। फिर श्री महाप्रभुजी को कहा, "अहं ब्रह्म अस्मि", "एको ब्रह्म-द्वितीयोनास्ति" के अमर मंत्र की दीक्षा प्रदान की। श्री महाप्रभुजी ने योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज की पूजा व अर्चना की। तथा यह भजन सुनाया-

भजन (पद राग सोहनी)

धन्य-धन्य हो ऐसा भाग सिकन्दर।
दर्शन दिया हो सायब, बाहर अन्दर॥टेर॥

ज्ञान विज्ञान स्वरूप स्वच्छन्दर।
बिराजिया दिल मन्दिर अन्दर॥१॥

ब्रह्मा हो नन्द आनन्द जैसा इन्दर।
होत प्रकाश, पूनम का हो चन्दर॥२॥

अचल उजास भया दूर गई धुन्दर।
मन मोहन हरि हो, आप मुकन्दर॥३॥

सतगुरु सायब, देवपुरीजी।
श्री स्वामी हो दीप स्वरूप है सुन्दर॥४॥

भजन (पद राग बड़ो आसा)

साधो भाई महामन्त्र हम पायो।
ब्रह्मा पायो रे विष्णुपायो रे, शिव शंकर खुद सदायो॥ टेर॥

ईश्वकूल सूर्य पायो, महाराजा मनु सद वायो।
राजा रघु दशरथ जन पायो, मुनि वरिष्ठ सद दायो॥ १॥

रामचन्द्र, विश्वामित्र पायो, सप्तऋषि सद दायो।
गोरखनाथ, नवनाथा पायो, श्री पूज्य दत्त सदायो॥ २॥

नारद-शारद, शेष जी ने पायो, कालू कीर सद दायो।
पारासुर सारासुर पायो, वेद व्यास सद दायो॥ ३॥

मुनि शुकदेव जनक विदेही, अष्टावक्र सद दायो।
अर्जुन कृष्ण मेहरम कर पायो, श्री शंकराचार्य सद दायो॥ ४॥

अनन्त कोट ऋषि-मुनि भक्त जन, साधक सिद्ध सद दायो।
सतगुरु सायब देवपुरीजी, स्वामी दीप पद पायो॥ ५॥

यह भजन सुनाकर श्री महाप्रभुजी ने योगीराज से निवेदन किया कि "हे गुरुदेव! आप हमारे घर पधारने की कृपा कीजिये। मेरे माता-पिता आपके दर्शन कर पावन होंगे।" योगीराज ने श्री महाप्रभुजी के निवेदन को स्वीकार किया। और दोनों विभूतियाँ गाँव हरि वासणी की ओर चले।

गाँव हरि वासणी में दोनों विभूतियों के दर्शन कर महन्तजी श्री स्वामीजी उदयपुरीजी महाराज अति आनन्दित हुए। उन्होंने दण्डवत् प्रणाम कर दोनों ही विभूतियों को पवित्र आसनों पर विराजमान किया। महन्तजी प्रार्थना व पूजा स्तुति करके कहने लगे, "आज मेरा जीवन धन्य हो गया। मेरी आँखों के सामने साक्षात् हरि और हर विराजमान हैं। हमारा गाँव, हमारा देश, सभी आपके पधारने से पवित्र हो गये।" उन्होंने दोनों विभूतियों को भोजन कराया। कुछ समय बाद महालक्ष्मी श्रीमती चन्दन देवी ने साष्टांग प्रणाम किया, फिर इनके चेहरे की ओर देखा। वे विस्मय में पड़ गयीं। यह चेहरा उन्हें कुछ जाना-पहचाना लगा। उन्हें आभास हुआ, जैसे पहले भी कभी योगीराज को देखा है। तभी स्वयं योगीराज ने कहा, "मातेश्वरी, आप जो सोच रही हैं वह सत्य है। मैंने महाशिवरात्रि के शुभावसर पर आपको ध्यानावस्था में दर्शन दिये थे। उस समय मैंने आपसे कहा था। मैं एक ईश्वरीय विभूति के साथ शीघ्र ही आपसे मिलूंगा। मैं वही शिव हूँ। यह ईश्वरीय विभूति यह विश्वदीप है। आप किसी प्रकार का भ्रम न करें।"

गुरुदेव के इन वचनों के साथ ही मातेश्वरी का भ्रम दूर हो गया। उन्होंने मन में सोचा "वास्तव में वही चेहरा, वही रूप, सब कुछ वही है। यह वही कैलाशपति हैं, जिनके आशीर्वाद से हमारे घर में प्रभु का अवतार हुआ है। आज मेरा अहोभाग्य है जो साक्षात् शिवजी हमारे घर पधारे हैं।" ऐसा सोचकर उन्होंने योगीराज के चरणों में पुन: प्रणाम किया। तत्पश्चात् चरणामृत लेकर अपने सभी बच्चों व परिवार जनों को वितरित किया। स्वयं मातेश्वरी ने चरणामृत पान करके अपने अहोभाग्य की सराहना की। उस दिन बड़ा आनन्दमय वातावरण रहा। श्री देवपुरीजी महाराज ने रात्रि विश्राम भी

वहीं पर किया। रातभर सत्संग व रात्रि जागरण चलता रहा।

भजन

जय मातेश्वरी जय देवी चन्दन। विश्व दीप ज्योति, घर तेरे नन्दन॥
धन्य दीप प्रभु, धन्य मातेश्वरी। तेरे स्मरण से होय दु:ख भंजन॥
आप ही आदि अनादि मैया। सब ही देव करे नित्य वंदन॥
ऋषि, मुनि अवतार जपे नित। तेरी कृपा से कटे जग बन्धन॥
मुझ पर मेहर करो मेरी मैया। दर्शन देय हरो भव बन्धन॥
श्रीदीप ज्योति, है आपका नन्दन। बाल मुकन्द जगत सुख कन्दन॥
"माधवानन्द" पर नजर निहारो। पापों के पहाड़ करो सब खण्डन॥

श्री महाप्रभुजी की योग्य शिष्य परीक्षा

पूज्य श्री महाप्रभुजी कई दिनों तक श्री देवपुरीजी महाराज के सान्निध्य में खाटू के पहाड़ों पर ही योग साधना करते रहे। एक बार अवधूत एवं सिद्ध योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज ने आपको प्रात: जल्दी प्रसाद लेकर आने की आज्ञा दी। आज्ञानुसार श्री महाप्रभुजी प्रसाद लेकर आये और दाहिने हाथ की हथेली पर रखकर गुरुदेव योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज को प्रस्तुत किया। उस समय योगीराज ने महाप्रभुजी का हाथ पकड़ लिया। तत्काल चाकू निकाल कर उनके हाथ में जगह-जगह पर घाव करने लगे। देखते ही देखते खून के फव्वारे फूट गये। गुरुदेव योगीराज ने दूसरे दिन भी महाप्रभुजी को प्रसाद लेकर आने को कहा। तदन्तर श्री महाप्रभुजी मठ में पधारे और दाहिने हाथ में पट्टी भी बांधी। गुरुदेव की आज्ञानुसार आप दूसरे दिन फिर गाँव से प्रसाद लेकर गुरुदेव के पास पहुँचे। महाप्रभुजी ने योगीराज को दण्डवत् प्रणाम किया और बायें हाथ से प्रसाद गुरुदेव के समक्ष प्रस्तुत किया। तब गुरुदेव योगीराज ने महाप्रभुजी का बायाँ हाथ पकड़कर उस पर भी चाकू से कई घाव कर दिये। यह हाथ भी खून से रंग गया।

इसके पश्चात योगीराज ने महाप्रभुजी के चेहरे की ओर देखा। उनके चेहरे पर अभी तक वही मुस्कान थिरक रही थी। तब गुरुदेव ने कहा; "हे दीप! यह तुम्हारी प्रथम परीक्षा थी। मैंने तुम्हें कोई दण्ड नहीं दिया, बल्कि ऐसा करके मैंने तुम्हारे हाथों में वो शक्ति भर दी है कि जिससे तुम जिस किसी मनुष्य के सिर पर हाथ रखोगे वह मनुष्य सभी दुखों से मुक्त होकर जीवन व्यतीत करेगा। वह व्यक्ति एक अलौकिक आनन्द और परम शान्ति अनुभव करेगा।" इसलिए मैंने तुम्हारे साथ ऐसा किया है। गुरुदेव के ऐसे वचनों को सुनकर श्री महाप्रभुजी ने कहा कि "हे गुरुदेव, आप सदैव लोगों की भलाई

करते हैं। इसमें हम सभी की भलाई निहित है। तभी तो मैंने देखा कि तेज चाकू से आपने मेरे हाथों पर घाव किये लेकिन दूसरे ही दिन वे घाव साधारण उपचार से ही बिल्कुल ठीक हो गये।" इस घटना के पश्चात् श्री गुरुदेव योगीराज ने श्री महाप्रभुजी को तीसरे दिन भी प्रात: फिर प्रसाद लेकर आने का आदेश दिया। गुरुदेव की आज्ञा पाकर श्री महाप्रभुजी तीसरे दिन भी प्रात: प्रसाद लेकर गुरुदेव के समक्ष प्रस्तुत किया। श्री महाप्रभुजी ने गुरुदेव योगीराज को दण्डवत् प्रणाम किया तथा उनके सामने बैठ गये। इस पर देवपुरीजी महाराज ने मुस्कुराते हुए कहा, "दीप, तुम शायद डर गये।" गुरुदेव के वचन को सुनकर महाप्रभुजी बोले, "गुरुदेव आपके पास डर कैसा? यहाँ आकर तो प्रत्येक व्यक्ति डर से मुक्त हो जाता है। फिर मैं तो आपका सेवक हूँ।" इससे प्रसन्न हो श्री देवपुरीजी महाराज ने श्री महाप्रभुजी से कहा, "दीप मैं तुम से बहुत खुश हूँ। तुम जो चाहो वो मुझसे माँगो।"

तब श्री महाप्रभुजी ने निवेदन किया, "हे गुरुदेव! आप आपके निर्गुण तथा सगुण दोनों स्वरूपों साक्षात् आत्मज्ञान तथा भीतर बाहर आत्मप्रकाश मुझे दे दीजिये।"

सिद्ध योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज के पास में एक भाला था। वे उस भाले को थामकर खड़े हो गये और श्री महाप्रभुजी की पीठ मेरुदण्ड की हड्डियों के बीच में जोर से भाला दे मारा। नुकीला भाला महाप्रभुजी की पीठ में तीन इन्च अन्दर घुस गया। पीठ से रक्त की तेज धाराएं फूट पड़ी। इतनी कठोर परीक्षा में भी श्री महाप्रभुजी सफल हो गये। उनके चेहरे पर अभी भी वही मुस्कुराहट थी। आँखों में सफलता की चमक थी। श्री महाप्रभुजी की पीठ में भाला पिरोये सिद्ध योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज ने सुमधुर वाणी में कहा, "वाह दीप! तुम सचमुच महान्शक्तिशाली हो। एक दीप आकाश में सूर्य चमकता है जो पूरे संसार को प्रकाश देता है। दूसरे विश्वदीप सूर्य तुम हो। देखो तुम मोहमाया अन्धकार में भटकते प्राणियों को अभयदान व आत्मज्ञान देने में समर्थ हो। ऐसा वरदान देकर उन्होंने उस नुकीले भाले को पीठ से बाहर निकाल लिया। खून को रोकने के लिए योगीराज ने एक कपड़ा जलाकर उसकी राख को महाप्रभुजी के घाव पर लगा दिया और खून बहना बन्द हो गया। कुछ ही समय पश्चात गुरुदेव खाटू की पहाड़ियों में अदृश्य हो गये। श्री महाप्रभुजी ने विचार किया कि कृपानाथ श्री सतगुरु देव की आज्ञा के बिना मैं कहीं भी नहीं जाऊंगा। यह निश्चय करके श्री महाप्रभुजी तीन दिन तक लगातार एक ही आसन पर विराजमान रहे। पीठ का घाव अब बिल्कुल ठीक हो गया था। इस घाव का निशान उनकी पीठ पर आजीवन रहा। तीन दिन बाद अचानक ही श्री देवपुरीजी महाराज पुन: प्रकट हुए। उन्होंने श्री महाप्रभुजी से कहा, "दीप अब तुम कहीं एक जगह पर स्थान बनाकर रहो। सर्व रिद्धि-सिद्धि तुम्हारे आधीन रहेंगी।" तब महाप्रभुजी ने कहा, "हे गुरुदेव! आप जैसे सिद्ध योगीराज के चरण कमल जहाँ होंगे, वही आपके चरणों की धूल मेरे लिए सर्वस्व होगी।"

इसके पश्चात् सिद्ध योगीराज व श्री महाप्रभुजी ने प्रस्थान किया।

भगवा ध्वज

गाँव कचरास के पास तालाब से पूर्व की ओर श्मशान डूँगरी (पहाड़ी) नाम से विख्यात थी। वह जगह अत्यन्त डरावनी एवं भयानक थी। वहाँ आसपास रहने वाले लोगों की यह मान्यता थी कि इस श्मशान डूँगरी पर जिन्न, भूत-प्रेत आदि रहते हैं। वहाँ पर दिन के समय भी मनुष्य नहीं जाते थे। वहीं पर जाकर सिद्ध योगीराज खड़े हुए और कहने लगे, "दीप, यह जगह तुम्हारे लिए उपयुक्त है। तुम्हें इस स्थान को शाप मुक्त करना होगा। इस स्थान पर आने में लोगों में भय बना हुआ है। अत: तुम्हें उन सभी व्यक्तियों को अभयदान देना है।" यह कहते हुए सिद्ध योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज ने आश्रम के लिए भगवा झण्डा गाड़ दिया। उस समय श्री महाप्रभुजी ने आत्म अनुभव से यह भजन श्री गुरुदेव योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज को सुनाया।

"भगवा ध्वज" — एक भजन

है निशान भगवा हिन्द का, पूजनीक आदि अनादि।
पूजनीक आदि अनादि, सतगुरु शिव शंकर की गादी॥ टेर॥

सुरति और स्मृति गाँवें, कहते हैं ब्रह्मवादी।
प्रकट हैं प्रमाण वेद में, भिन्न-भिन्न कर समझादी॥ २॥

वन्दनीय विश्व का कहिये, त्याग प्रतीक हैं आदी।
साक्षीरूप सत्य सुख राशि, यह साँची बात बतादी॥ ३॥

भाग्यशाली भगवा की छाया, आवत हैं सत्यवादी।
अधम जीव नहीं जान सके हैं, भूल गया सत्यवादी॥४॥

श्री पूज्य भगवान्देवपुरीजी, अनुभव अगम लगा दी।
श्री स्वामी दीप इष्ट हैं आदि, सतगुरु चरण शरण प्रसादी॥ ५॥

यह भजन सुनकर सिद्ध योगीराज श्री देवपुरीजी महाराज मंत्र मुग्ध हो गये। अति प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे, "दीप, यहीं पर तुम्हारा आश्रम बनना चाहिए।" इतना कहकर श्री देवपुरीजी महाराज ने कैलाश की तरफ प्रस्थान कर दिया।

पण्डित श्री सरयू प्रसाद शास्त्री द्विवेदी

महान् ज्योतिषाचार्य एवं तत्राचार्य पण्डित श्री सरयूप्रसाद जी का जन्म संवत् १८९२ में अयोध्या नगरी से पश्चिम दिशा की ओर स्थित आठ कोस दूरी पर वाशिष्ठी सरयू नदी के दक्षिण तट पर 'सनाह' नामक ग्राम में हुआ था । आपका दीक्षा नाम सरस्वत्यानंदनाथ था। इनके पिता का नाम पण्डित राधाकृष्ण था। सरयूप्रसाद काश्यप गोत्रीय सरयूपारीय ब्राह्मण थे। आपकी उपाख्या द्विवेदी थी। आप शुक्ल यजुर्वेद की माध्यान्दिनी शाखा के अनुयायी थे। आपने अपनी शिक्षा अपने जन्म स्थान पर ही अन्य विद्वानों तथा घर पर ही अपने पिता से व्याकरण और ज्योतिष आदि विषयों का विधिवत अध्ययन किया था। पिता का स्वर्गवास होने बाद आप संवत् १९११ में पश्चिम दिशा की ओर यात्रा पर निकले और दैववश धीरे धीरे पेशावर तक भ्रमण करते चले गये। वहां से परिभ्रमण करते हुए जालंधर पीठ के पास 'कांगड़ा' नामक नगर मे पहुँचे। वहां इन्होने घर की चिन्ता को छोड़कर संस्कार वश श्रीमान् दुर्गानन्द जी से मन्त्रदीक्षा ग्रहण की और अयाचित व्रत धारण करके मुनिवृत्ति से साढ़े छः वर्ष तक तपस्या की। इधर उधर से इनकी सूचना को प्राप्त कर इनकी पत्नी इनको घर वापिस लाने को जब इनके पास गई, तब आप गुरु जी की आज्ञानुसार अपनी पत्नी के साथ अपनी जन्मभूमि पर वापिस आये। वहाँ आकर भी पवित्र और एकान्त स्थानों में देवाराधना करते हुये अपना समय व्यतीत किया। आपको एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जो पण्डित दुर्गा प्रसाद द्विवेदी के नाम से विख्यात रहे और संस्कृत कॉलेज जयपुर के प्राचार्य भी रहे हैं।

आप भगवान शिव तथा चंडिका व दुर्गा देवी के अनन्य उपासक रहे हैं। नवल किशोर प्रेस लखनऊ के संस्थापक श्री नवल किशोर जी ने जब आपके विषय में सुना तो आपकी विद्वता से प्रभावित हुए तथा आपको लखनऊ ले आए। कुछ दिनों के बाद लखनऊ के अनेकों स्थानों पर भ्रमण करते हुए गोमती नदी के पास ही 'चण्डी' चांदनकूँडा' नाम से प्रसिद्ध एक जङ्गल में ही निवास करने का विचार किया। वहां यथासमय रहते हुए चण्डी देवी का जो मूर्तिरहित पुराना चबूतरा था उस पर इन्होने महिष- मर्दिनी देवी की मूर्ति स्थापित की।। आज उस स्थान पर प्रतिमास अमावस के दिन प्रायः हजारों की संख्या में लोग माँ चण्डी देवी जी के दर्शन करने के लिये आते हैं।

मुंशी नवलकिशोर ने आप को अपने यहां रहने के लिए प्रार्थना की। तब आपने शहर के बाहर 'बादशाहबाग' नामक बगीचे में दो वर्ष तक निवास किया और वहीं पर 'संग्रह शिरोमणि' नामक ज्योतिष विषयक और 'सदाचारप्रकाश' नामक धर्मशास्त्र विषयक ग्रन्थों की रचना की जो ईस्वी सन् १८७५ और १८८३ में नवल किशोर प्रेस से ही प्रकाशित हुए थे। उस समय मुंशी जी का कारखाना साधारण था लेकिन इन ग्रंथों का प्रकाशन करने के बाद उन्नति को प्राप्त हुआ और स्वयं सी. आई. ई. पद के भागी हुए। उसके बाद प्रसंगवश संवत् १९३२ में मुंशी जी ने आप का परिचय जयपुर के महाराजाधिराज श्री १०८ सवाई रामसिंहजी से कराया। महाराज साहब ने इनकी ख्याति से प्रभावित हो कर अपने राज्य में आश्रय दिया। उस समय से आप संवत् १९५१ तक वहीं रहे और आगमरहस्य, पुरुषार्थकल्पद्रुम, सप्तशती सर्वस्व, परशुरामसूत्रवृत्ति आदि ग्रन्थों की रचना की। आगमरहस्य के आदि में-

जीव्याज्जयपुराधीश रामसिंहाह्वयो नृपः।
यद्भुजच्छायमाश्रित्य शान्तो मे भूभ्रमक्लमः॥

इस प्रकार आपने अपनी रचना में जयपुर नरेश की प्रशंसा की है। जयपुर नरेश ने आपको समय समय पारितोषिक प्रदान कर आपको सम्मानित भी किया। इसके बाद आपने बदरिकाश्रम आदि तीर्थों की यात्रा भी की थी।

एक समय अफ़ीम कमीशन के प्रसङ्ग से दरभङ्गा के स्वर्गवासी महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह जब जयपुर गये तब वहां आप की प्रशंसा सुन कर आपको एकांत एकान्त में बुलाकर आप से कई प्रकार के तन्त्रविषयक प्रश्न किये। आपके द्वारा दिए गए उत्तरों से अत्यंत प्रसन्न और सन्तुष्ट हुये और आपको दरभङ्गा आने के लिए विनम्र निवेदन किया। जब कुछ दिनों तक आप नहीं गये तब महाराज ने पत्र, तार के माध्यम से आपको संदेश भेजे। तब आप ने जयपुर महाराजाधिराज श्री १०८ करनेल सर सवाई माधवसिंह जी, की आज्ञा से अपने पुत्र पं० दुर्गाप्रसाद द्विवेदी को राजकीय संस्कृत पाठशाला में अध्यापक नियुक्त करके दरभङ्गा चले गये। वहां जाकर महाराज के आश्रय में प्रायः दो वर्ष व्यतीत किये और वहीं पर प्रत्यभिज्ञादर्शन का सारभूत शक्तिदर्शन नामक ग्रन्थ का सङ्कलन किया। उन्हीं दिनों में जल - वायु के विकार से आपका शरीर बहुत कृश हो गया था।

इसी अवसर पर बाराबंकी जिले के अन्तर्गत लाखूपुर के ताल्लुकेदार श्रीमान् सर्वजीतसिंह जी ने आपको अपने देश में रहने के लिए दरभङ्गा अपना एक दूत भेजा। उस समय दरभङ्गा - महाराज कहीं बाहर गये थे। पर आप वहां से प्रस्थान कर गए और देश में पहुँच कर अपने 'पण्डितपुरी' नामक आश्रम में निवास किया जो अयोध्या की आधुनिक सीमा से पश्चिम दिशा में प्रायः आठ कोस दूरी पर रामायण के अनुसार अयोध्या के अन्तर्गत है और वहां पर अपने लघु-भ्राता पण्डित नन्दकिशोर जी के द्वारा विन्ध्याचल के पत्थरों का एक छोटा शिवमन्दिर बनवाया और उसमें शिव-पार्वती की मूर्ति स्थापित की। यही एक पुस्तकालय भी स्थापित किया था। बस इसी स्थान में सानन्द देवाराधन में काल- व्यतीत करने लगे और ललिता सहस्र नाम की व्याख्या, दीक्षापद्धति तथा अन्यान्य कई स्तोत्रों की व्याख्यायें की। आगमोक्त तांत्रिक दीक्षा पद्धति को परिष्कृत कर व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किया।

कालक्रम से आहार छूटने लगा और कुछ दिनों में केवल गोदुग्ध मात्र का सेवन करने लगे। बाद में शरीर अतिक्षीण हो गया। तब आप ने भूमि पर अपना आसन कर लिया और यथा संभव दान आदि करने लगे। अन्त में संवत् १९६३ कार्तिक कृष्ण ६ सोमवार को सायंकाल सूर्यास्त के समय प्राणायाम द्वारा इस शरीर का त्याग कर ब्रह्म भाव की प्राप्ति की। आपके पुत्र महामहोपाध्याय दुर्गा प्रसाद द्विवेदी तथा पौत्र श्री गिरिजा प्रसाद द्विवेदी तथा प्रपौत्र गंगाधर द्विवेदी उल्लेखनीय विद्वान रहे हैं।

आपके द्वारा रचित ग्रंथ *

१. संग्रह शिरोमणि　　२. सदाचार प्रकाश　　३. वर्णबीज

प्रकाश

४. सप्तशती सर्वस्व　　५. मातृका स्तुति　　६. पादुका पंचकम्

७. सर्वार्थ कल्पद्रुम　　८. परशुराम सूत्रवृत्ति　　९. साधक सर्वस्व

१०. दीक्षा पद्धति　　११. ललिता सहस्रनाम वृत्ति

वर्तमान में गणगौरी बाजार जयपुर में स्थित सरस्वती भवन में श्री सरयू प्रसाद द्विवेदी जी निवास करते थे तथा इसी के पास स्थित श्री वीरेश्वर भवन में रहने वाले श्री वीरेश्वर शास्त्री जी इनसे विद्या प्राप्त करने के लिए जाते थे।

त्रिवेणी धाम की सन्त परम्पराएँ

त्रिवेणीधाम की स्थापना श्री गंगादास जी महाराज के कर- कमलों द्वारा लगभग दौ सो वर्ष पूर्व की गयी थी। आपका जन्म, अथौरा गाँव (अजीतगढ़) के ठाकुर एवं जयपुर रियासत के सैन्यविभाग के सेवानिवृत्त अधिकारी श्री मनोहर सिंह जी के घर में, सन्त-समाज (जमात) के प्रमुख के आशीर्वाद एवं वरदान से हुआ था। किशोरावस्था में ही आपकी सगाई होने वाली थी, किन्तु उसकी पूर्वसन्ध्या को ही आपकी आत्मा ने विद्रोह कर दिया, अतः आपने रात्रि को गृहत्याग कर वैराग्य के मार्ग को अपना लिया। संयोगवश पुष्कर में आपको खोजीद्वाराचार्य श्री भरतदास जी के दर्शन हुए। उन्हीं के साथ आप अयोध्या पहुँचे।

श्री गंगादास जी महाराज अयोध्या में काठिया आश्रम के पूज्य सन्त श्री भरतदास जी के सानिध्य में रहकर साधना करने लगे। गुरुदेव ने आपकी सेवा से सन्तुष्ट होकर, दीक्षा प्रदान की। कदाचित् आपके जन्म स्थान के समीप स्थल धाराजी आश्रम पर अयोध्या से आए एक सन्त द्वारा पता बताए जाने पर अनुमान से आपके पिताश्री अयोध्या पहुँच गए और पूज्य गुरुदेव भरतदास जी से अनुनय-विनय करते हुए, अपनी इकलौती संतान को अपने क्षेत्रस्थल पर भिजवाने का अनुरोध किया। पूज्य गुरुदेव की आज्ञा से आपने अपने क्षेत्र में लौट कर राम-नाम प्रचार का दायित्व संभाल लिया।

स्वामी श्री गंगादासजी का तपश्चरण

पूज्य स्वामी जी ने कई प्राकृतिक स्थानों पर साधनाएँ कीं किन्तु सबसे बड़ी तपस्या आपने श्रीजगदीशजी के स्थान पर की, जहाँ आपको अनेक प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सन्तों के दर्शन हुए, आशीर्वाद मिला और वहाँ से चलकर स्वामी जी ने वर्तमान धाम-स्थल से उत्तर में साइवाड़ के पास अपना आसन जमाया, किन्तु गृहस्थियों द्वारा निरन्तर जमघट लगाए रहने के कारण आप वहाँ से चल कर, अपने वर्तमान स्थान पर आ गये तथा यहीं पर अस्थायी आश्रम की भी स्थापना की।

आप के आशीर्वाद से ही आपकी माता को दूसरे पुत्र की प्राप्ति हुई, जो उनकी अपने वंश बढ़ाए जाने की माँग पर वरदान स्वरूप संभव हुई थी। युवावस्था प्राप्त होने पर उसका विवाह भी कर दिया गया, किन्तु थोड़े दिनों के बाद स्वामीजी का अनुज निसंतान ही चल बसा। युवक की पत्नी ने स्वामी जी से विनय की और उनके माता-पिता को दिए

वचनानुसार वंशवृद्धि हेतु अपने पतिदेव को जीवित करने की याचना की। फलतः स्वामीजी ने अपने प्राणों का दान कर दिया। छोटा भाई जीवित हो गया और उसी समय स्वामी जी का साकेतवास हो गया।

स्वामी श्री जानकीदास जी महाराज

स्वामी श्री गंगादास जी महाराज के परलोक सिधारने के बाद उनके प्रिय शिष्य श्री जानकीदास जी त्रिवेणीधाम की गद्दी पर विराजे। आपका जन्म कुण्डला स्थित बलेश्वर में हुआ था। आप बचपन में ही पहाड़ों पर जाकर एकान्त स्थान पर चिन्तन मनन करते थे। आपने तत्कालीन अलवरनरेश के आग्रह पर उन्हें अपने ही घुटनों पर विराजित श्री राघवेन्द्र सरकार एवं जगज्जननी किशोरी जी के दर्शन करवाए और उसी स्थान पर भगवान का भव्य मन्दिर बनाने का आदेश दिया।

आपके अनेक चमत्कारों में से एक चमत्कार त्रिवेणी गंगा के जल को घी बनाकर उसमें मालपुए बनाने एवं पुनः घी के लौटाए जाने पर उसको त्रिवेणी जल में ही गिराने का दृष्टान्त अत्यन्त प्रचलित है। इसके अतिरिक्त वर्षा आने की भविष्यवाणी करना तो आपके लिए सामान्य बात थी। स्वामीजी के अद्भुत चमत्कारों से प्रभावित होकर आस-पास के लोगों ने उनसे दीक्षा ग्रहण की, फलतः शिष्यपरम्परा में आशातीत वृद्धि हुई। श्री जानकीदास जी महाराज के साकेतवास के बाद धाम की गद्दी पर श्रीरामदासजी महाराज विराजे, किन्तु अल्प आयु में ही चल बसने के कारण आपके बाद श्री भजनदास जी महाराज गद्दी पर आसीन हुए। आपके कार्यकाल में त्रिवेणी धाम में सन्त सेवा एवं गौसेवा प्रचुर रूप से होने लगी जिससे आश्रम की महिमा सर्वत्र प्रसृत हुई।

श्री भगवानदास जी महाराज का प्राकट्य

चार पीढ़ियों के बाद आश्रम की पाँचवी पीढ़ी में जिन सन्त भगवान् का पदार्पण हुआ वे "यथा नाम तथा गुण" के अनुरूप परम उदार, अनुशासनप्रिय एवं भगवान के परम भक्त थे। आपके कार्यकाल में भगवान् श्री नृसिंह की प्रतिमा के साथ ही श्री सीताराम जी की प्रतिमाएँ भी प्रतिष्ठापित की गयीं। मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया गया। तथा उसे भव्य स्वरूप प्रदान किया गया। निरन्तर सन्तसेवा होने लगी। अखण्ड नाम संकीर्तन तथा रामचरितमानस का अखण्ड परायण भी किया जाने लगा।

इससे त्रिवेणी धाम की शिष्यपरम्परा बढ़ने लगी। सन्तमण्डलियाँ आने लगीं और चारों ओर भजन होने लगे। आप भगवान के सच्चे भक्त होने के साथ ही परम दयालु सन्त थे। दुखियारे लोग आकर आपके समक्ष अपना दुःख दर्द सुनाने लगे। बड़े महाराज के बताए उपायों के द्वारा उनका उपचार होने लगा। एक बार फसल पर रोली नामक रोग लग

गया। किसान त्राहि-त्राहि करने लगे। बड़े महाराज श्री की शरण में आकर उन्होंने प्रार्थना की। महाराज श्री ने पूज्य गुरुदेव एवं भगवान् से उनका दुःखड़ा सुनाया और प्रेरणा पाकर आदेश दिया, कि श्री गंगादास जी महाराज के चरणों को धोकर उसका पानी लें। उसमें और पानी मिलाते जाइए और फसल पर छिड़किए। पूज्य गुरुदेव सब कुछ ठीक करेंगे। फसल का रोली रोग दूर हो गया और फसल पक कर कई गुना बढ़ गयी। किसान प्रसन्न हो गये। इसके बाद प्रतिवर्ष होली के अवसर पर धूलण्डी के दूसरे दिन मेला भरने लगा।

आपके बहुत से चमत्कारों में से यह भी प्रसिद्ध है, कि शाहपुरा के समीप ही एक गाँव में मृतक बच्चे को आपने जीवनदान दिया। भू- गर्भ में जल की स्थिति बतायी जाने लगी। खेतों में कुओं के निर्माण होने लगे। एक बार गंगा के तट पर आप द्वारा बनाए गए कुण्ड में एक ग्वाला भेड़ों को नहलाकर पानी गन्दा कर रहा था। बड़े महाराज श्री के मना करने पर उसने उपेक्षा वृत्ति दिखाते हुए कहा महाराज बस एक भेड़ ही और रह गयी है और उसे भी नहलाने लगा। बड़े महाराज ने कहा एक ही रह गई है। रात्रि को उसकी सभी भेड़ें मर गई केवल एक ही रह गयी। सुबह ग्वाला रोता हुआ आया, किन्तु दयालु होने के कारण महाराज श्री ने कहा- घर जा और रेवड़ को चराने ले जा। ग्वाले ने घर जाकर देखा सभी भेड़ें जीवित हो गयी थीं।

आपने साधु-समाज को संगठित करने का भी बीड़ा उठाया। फलतः बड़े-बड़े सन्तों का पदार्पण होने लगा। श्री कौशल्यादास जी महाराज एवं श्री किशनदास जी महाराज आपके अभिन्न अंग बन गए थे। वे दोनों कई दिनों तक यहाँ रहते तो कभी आप उनके यहाँ यज्ञशाला की बावडी एवं स्टेशन के पास बगीची में जाकर रहते। साधुसमाज में आपका बहुत बड़ा सम्मान था। साधुओं के प्रत्येक कार्यो में आपकी सलाह ली जाने लगी थी। फलतः आपकी शिष्यपरम्परा एवं आश्रम की महिमा में आशातीत वृद्धि हुई। जगह-जगह तीर्थस्थलों पर आपकी प्रेरणा से धर्मशालाएँ एवं मन्दिर बनवाए गए। आश्रम के पास पड़ी भूमि पर आप द्वारा खेती की जाने लगी, जिससे आश्रम की आर्थिक स्थिति में भी अच्छा सुधार हुआ। अन्नदान की दृष्टि से भी धाम स्वावलम्बी बन गया।

शिष्यपरम्परा अन्य प्रदेशों में रहने वाले राजस्थान के प्रवासियों तक भी बढ़ने लगी थी, अतः आपकी दूर-दूर यात्राएँ होने लगीं। जहाँ भी आप पधारते, बड़ी संख्या में शिष्य आपका स्वागत सत्कार करते। आप लगभग नब्बे वर्ष तक आश्रम की सेवा करते रहे और मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपदा १९२७ विक्रम संवत् २०२८ को साकेतवासी हो गए।

त्रिवेणीधाम का स्वर्णयुग (छठी पीढ़ी)

पूज्यपाद बड़े महाराज के साकेतवास के बाद त्रिवेणीधाम की गद्दी पर महाराजश्री के परम शिष्य वर्तमान

महाराजश्री श्री १००८ श्री नारायणदासजी महाराज आरूढ़ हुए। आपका जन्म त्रिवेणी धाम से ४ कि.मी. दूर चिमनपुरा ग्राम में महर्षि कुल में श्री रामदयालु जी की धर्मपत्नी, धर्मपरायणा श्रीमती भूरी देवी की कोख से आश्विन कृष्ण सप्तमी विक्रम संवत् १९८४ में हुआ। आपकी मंदिर में शरणागति से पूर्व ही लगभग आपका संपूर्ण परिवार बड़े महाराज श्री की शिष्यपरम्परा ग्रहण कर चुका था। आपकी शिक्षा आस-पास के पंडितों के निर्देशन में ही हुई। किशोरावस्था में ही आपको असाध्य रोग से ग्रस्त देखकर आपकी माता ने अनहोनी की आशंका से आपको त्रिवेणीधाम के महाराज श्री के चरणों में समर्पित कर दिया। बड़े महाराज श्री ने आपका उपचार करवाया, आशीर्वाद दिया, इसके बाद महाराज श्री अपने गुरुदेव को अपना प्राणदाता मानने लगे। आपने अनूठी आस्था एवं सच्ची श्रद्धा के साथ बड़े महाराज की सेवा की।

पूज्य बड़े महाराज के आदेशानुसार आपने पंचाग्निसाधना, शीतसाधना एवं जलसाधना की। अपने शरीर को हर तरह से तपाकर तपस्या से निर्मल बना लिया। आज आप गर्मी, सर्दी, वर्षा में मात्र एक वस्त्र में ही रह कर अपनी दिनचर्या चलाते हैं। प्रातः ३ बजे से लेकर रात्रि दस बजे तक निरन्तर सन्तसेवा तथा गौ-सेवा करते हुए प्राणी मात्र का दुःख दूर करने का प्रयास करते रहते हैं। आपका यह कालखण्ड आश्रम के सर्वांगीण विकास का इतिहास है। आश्रम के बड़े-बड़े भवन आपकी प्रेरणा एवं योजना के ही परिणाम हैं। अष्टोत्तरशतकुण्डीय यज्ञशाला एवं मानसमंदिर आज भी विश्व में अपना अद्वितीय महत्त्व रखते हैं।

सन् १९७२ से ले कर आज तक आपने अनेक अष्टोत्तरशत यज्ञ न केवल त्रिवेणी की भूमि पर अपितु मुम्बई नगरी में दो बार, इन्दौर में अनेक बार तथा डाकोर धाम में भी कर चुके हैं। रामनामसंकीर्तन आपका मुख्य अभियान है, जिसकी शाखायें बड़े-बड़े नगरों, कस्बों, गाँवों के अतिरिक्त इण्डोनेशिया एवं इटली तक में कार्यरत हैं। 'कलियुग केवल नाम अधारा' के आधार पर आप जनसाधारण को भगवन्नाम से जोड़कर उन्हें भवसागर से पार होने की प्रेरणा दे रहे हैं।

भारतीय सन्त-समाज ने आपकी भगवद्भक्ति, कर्त्तव्यपरायणता, उदात्त भावनाओं को देख कर सन् १९९८ में आपको डाकोर स्थित ब्रह्मपीठ पर आसीन कर, 'ब्रह्मपीठाधीश्वर' की उपाधि एवं उज्जैन कुम्भ २००४ में सारे सन्त समाज ने 'खोजी द्वाराचार्य' की उपाधि से विभूषित किया। ब्रह्मपीठस्थित लक्ष्मी नृसिंह मन्दिर में आमूल-चूल परिवर्तन कर आपने उसको भव्य, नव्य एवं दिव्य बना दिया, जिससे आपकी ख्याति और भी बढ़ गयी। त्रिवेणी ही की भाँति आपने डाकोर में भी रामचरितमानसभवन बनावाया, जो संगमरमर के पत्थर से बड़ा ही आकर्षक है।। यहाँ काँचजड़ित निजमन्दिर एवं जगमोहन भी दर्शनीय हैं।

वेदविज्ञानरहस्यविद् स्वामी सुरजनदास जी

प्रणम्यः सद्गुरुः शान्तः स्वामी सुरजनः सदा।
यत्कृपालवलेशेन सत्तर्कस्फुरणं मम।।

पूज्य गुरुवर्य स्वामी श्री सुरजनदास जी बीसवीं शताब्दी में राजस्थान के सुविख्यात तथा यशस्वी संस्कृतविपश्चित् आचार्य और वेदविज्ञान के रहस्यविदों में अन्यतम थे। उनके विषय में भी यह उक्ति सर्वथा चरितार्थ होती है-

नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्।

पूज्य स्वामीजी का जन्म शेखावाटी में झुंझुनू जिले के जेजूसर नामक गाँव में एक कृषक परिवार में हुआ था। वे बाल्यावस्था में ही उदयपुर शेखावाटी की दादूसन्तमण्डली के प्रधान स्वामी श्री गीधारामजी द्वारा दादूसम्प्रदाय में दीक्षित हो गये थे। उनकी संस्कृतशिक्षा जयपुर के सुप्रसिद्ध दादू संस्कृत महाविद्यालय तथा वाराणसी में सम्पन्न हुई। पूज्य स्वामीजी के अध्ययन तथा प्रारम्भिक अध्यापन के समय निष्कामकर्मयोगी सन्त शिरोमणि स्वामी श्री मङ्गलदास जी के कुशल सञ्चालकत्व के कारण दादू संस्कृत महाविद्यालय जयपुर में श्रेष्ठतम संस्कृत महाविद्यालय के रूप में सुप्रथित हो गया था । पूज्य स्वामी सुरजनदास जी ने सन् १९८९ में उनके जीवन में अन्तिम ग्रन्थ के रूप में सम्पादित ''त्यागमूर्ति स्वामी श्री मङ्गलदास स्मृति-ग्रंथ'' में दादू संस्कृत महाविद्यालय की उच्च प्रतिष्ठा का निरूपण किया है। प्रारम्भ में पण्डित रामचन्द्र जी महाविद्यालय के लब्धप्रतिष्ठ प्राचार्य थे। पूज्य स्वामी जी ने दादू महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में भी कार्य किया था। उन्होंने दादूसम्प्रदाय के प्रति अनन्य आस्था के कारण 'श्रीदादूवाणी' का संस्कृत में पद्यानुवाद किया था, जो अप्रकाशित है।

पूज्य स्वामी जी ने वाराणसी की साहित्याचार्य, व्याकरणाचार्य, सांख्ययोगाचार्य तथा वेदान्ताचार्य - चार स्नातकोत्तर संस्कृतपरीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थीं। इस प्रकार वे प्रारम्भ में ही श्रेण्य संस्कृतसाहित्य,

संस्कृतव्याकरण तथा दर्शनशास्त्र के निष्णात विद्वान् के रूप में प्रथित हो गये थे। संस्कृत की इन चार प्राच्य स्नातकोत्तर उपाधियों को प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने सन् १९४८ में राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर की पहली एम.ए. (संस्कृत) परीक्षा में प्रथम श्रेणी तथा प्रथम स्थान प्राप्त किया। पूज्य स्वामी जी के प्राप्ताङ्कों की प्रतिशतता (Percentage) राजस्थान विश्वविद्यालय के समस्त संकायों की स्नातकोत्तर परीक्षाओं में सर्वोच्च थी, अत: उनको चान्सलर मेडल (कुलाधिपति-पदक) प्रदान किया गया।

पूज्य स्वामी जी ने दादू संस्कृत महाविद्यालय में अध्यापन शुरू करने के समकाल में समीक्षा चक्रवर्ती पण्डित ओझा जी के सान्निध्य में वेद-विज्ञान का भी अध्ययन किया। महामहोपाध्याय पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी द्वारा रचित 'श्री मधुसूदन ओझा-चरितामृत' और मानवाश्रम विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित गुरु-शिष्य की संक्षिप्त परिचयात्मक पुस्तिका तथा 'वेदविज्ञानविद् गुरुशिष्यत्रयी' नामक ग्रन्थ में पण्डित ओझा जी की शिष्य परम्परा में पूज्य स्वामी जी के नाम का स्पष्ट उल्लेख है। उनका नाम नियमपूर्वक पुस्तक खोल कर पण्डित ओझा जी से अध्ययन करने वाली शिष्य मण्डली में उल्लिखित है। शिष्यमण्डली के मध्य में विराजमान पण्डित ओझा जी के एक फोटो की प्रतिलिपि में स्वामी जी का भी चित्र विद्यमान है। शिष्यमण्डली की सूची में उनके नाम के आगे 'वेदान्त-व्याकरणाचार्य, दादू संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर' भी उल्लिखित है। पण्डित ओझा जी के सुपुत्र पं. प्रद्युम्न ओझा ने 'महर्षिकुलवैभवम्' (ग्रन्थाङ्क ५९) की भूमिका में ग्रन्थों के सम्पादन तथा प्रकाशन में सहयोग करने वाले शिष्यों में पूज्य स्वामी जी के नाम का भी उल्लेख करते हुए आभार व्यक्त किया है। पूज्य स्वामी जी वेदविज्ञानगुरु पण्डित ओझा जी के अतिश्रद्धावान् शिष्य थे।

पूज्य स्वामी जी ने प्रारम्भ में दादू संस्कृत महाविद्यालय में प्राध्यापक तथा प्राचार्य के रूप में अध्यापन किया। तदनन्तर वे राजकीय महाविद्यालयीय शिक्षा में संस्कृत - प्राध्यापक के रूप में चयनित हो गए। जयपुर, किशनगढ़ तथा बीकानेर के राजकीय महाविद्यालयों में संस्कृत-प्राध्यापक के रूप में अध्यापन के पश्चात् वे कोटा तथा अजमेर के राजकीय महाविद्यालयों में स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए। वे संस्कृत के अध्यापन में इतने अधिक परिश्रमी और कुशल थे, कि राजस्थान विश्वविद्यालय की एम.ए. (संस्कृत) परीक्षा में पाँच वर्षों तक निरन्तर उनके महाविद्यालय के संस्कृत विद्यार्थी ने ही सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया। राजस्थान के महाविद्यालयों में संस्कृत-प्राध्यापक के रूप में वे सर्वाधिक लब्धप्रतिष्ठ थे। उस समय सम्पूर्ण राजस्थान में एकमात्र स्वामीजी ही चार विषयों में आचार्योपाधिधारी थे। वे संस्कृत-काव्यशास्त्र, संस्कृतव्याकरण, दर्शनशास्त्र तथा

वेदशास्त्र - इन सब विषयों के अध्यापन में निष्णात थे।

दादू महाविद्यालय तथा राजकीय महाविद्यालयों के संस्कृत विभागों में अध्यापन में अत्यधिक व्यापृत रहने पर भी पूज्य स्वामी जी के सम्पादकत्व में वेदविज्ञान के आठ ग्रन्थ प्रकाशित किये गए। वे हैं-

1. आधिदैविकाध्याय : (हिन्दीभाषानुवाद-सहित)
2 आशौचपञ्जिका (हिन्दी में सारांश सहित)
3 पदनिरुक्तम्
4. देवासुरख्याति : (ग्रन्थसारात्मक हिन्दी भूमिका सहित)
5. पुराणोत्पत्तिप्रसङ्गः (हिन्दी में विस्तृत भूमिका सहित)
6. मन्वन्तरनिर्धारः (हिन्दी में प्रास्ताविक सहित)
7. सन्ध्योपासनरहस्यम् (हिन्दी में अनुवाद तथा यज्ञोपवीत विज्ञान के हिन्दी सारांश से युक्त)
8. वैज्ञानिकोपाख्यानं वैदिकोपाख्यानञ्च

इस प्रकार उन्होंने वेदविज्ञान गुरु पण्डित ओझाजी के प्रति अपने कर्तव्य का मनोयोगपूर्वक निर्वाह किया। उनके द्वारा रचित पितृतत्त्व नामक ग्रन्थ और विचारसागर का संस्कृत-रूपान्तर अप्रकाशित है।

तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय में प्रारम्भिक वर्षों में संस्कृत विषय के स्नातकस्तरीय अध्ययन की ही व्यवस्था थी। पूज्य स्वामी जी सन् 1966 के जून मास में तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय के नये स्नातकोत्तर संस्कृत-विभाग में प्रथम अध्यक्ष नियुक्त हुए। उनके अतिरिक्त जो संस्कृत व्याख्याता थे, उनमें से किसी को भी एम.ए. संस्कृत की कक्षाओं को पढ़ाने का पूर्वानुभव नहीं था, अतः उन्होंने अकेले ही निरन्तर चार शैक्षिक सत्रों तक एम.ए. (संस्कृत) की पूर्वार्ध और उत्तरार्ध कक्षाओं के अधिकतर पाठ्यविषयों का जनवरी से मार्च तक अतिरिक्त अध्यापन भी किया। यदि संस्कृतवाङ्मय के किसी एक विषय के विशेष अध्ययन (Specialization) वाला कोई विद्वान् रीडर पद पर चयनित होकर आ जाता, तो तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय के संस्कृतविभाग की स्नातकोत्तर कक्षाओं के विद्यार्थियों की कैसी दुर्दशा होती, उसकी कल्पना की जा सकती है। पूज्य स्वामीजी का यह महनीय अवदान है, कि उन्होंने तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्याालय के नये स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग को अपने नानाशास्त्रवैदुष्य और संकल्पोत्साह (Missionary Zeal) से सुस्थापित किया। उन्होंने लौकिक संस्कृत साहित्य

ग्रुप के अतिरिक्त दर्शनशास्त्र ग्रुप भी विशेषाध्ययन के लिए शुरू किया। प्रारम्भ में पूज्य स्वामी जी अकेले ही एम.ए. उत्तरार्ध के दर्शनशास्त्र ग्रुप के विद्यार्थियों का अध्यापन करते थे।

पूज्य स्वामीजी की अध्यापनशैली की यह प्रातिस्विक विशेषता विशेष रूप से उल्लेखनीय है, कि वे प्रतिसप्ताह शनिवार के दिन प्रथम दो कालांश तक एम.ए. संस्कृत के पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध के विद्यार्थियों की सम्मिलित कक्षा में सामान्य ज्ञान के संवर्धनार्थ संस्कृतवाङ्मय के विभिन्न विषयों पर चर्चा करते थे। अन्तिम दो कालांशों में पूर्वनिर्देशित कोई विद्यार्थी अपने अभीष्ट विषयबिन्दु (Topic) पर पत्र-वाचन करता था और बाद में पत्र के प्रतिपाद्य के बारे में पूज्य स्वामीजी समीक्षात्मक व्याख्यान देते थे। इस प्रकार पत्रवाचन की पद्धति से विद्यार्थियों में शोधप्रवृत्ति जाग्रत् होती थी। इसके अतिरिक्त प्रतिसप्ताह किसी एक पाठ्य विषय की लघु परीक्षा होती थी। अधिकतम दस अंकों के आधार पर उत्तरपुस्तिकाओं का प्राध्यापकों द्वारा मूल्याङ्कन किया जाता था। इस प्रकार विश्वविद्यालय की वार्षिक परीक्षा से पहले सभी पाठ्य विषयों की अनेक लघुपरीक्षाएँ सम्पन्न हो जाती थीं।

इस परीक्षण पद्धति का यह लाभ था, कि विद्यार्थी वार्षिक परीक्षा की विभीषिका से मुक्त हो जाते थे। यह सब पूज्य स्वामी जी की अध्यापन पद्धति का अभिनव प्रयोग (Innovation) था। तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर संस्कृत - विभाग के अतिरिक्त किसी भी अन्य विभाग में इस प्रकार की त्रिविध पद्धति का प्रचलन नहीं था। लघु परीक्षाओं के आयोजन के कारण द्वितीय श्रेणी की योग्यता वाले विद्यार्थी भी प्रथम श्रेणी के योग्य हो जाते थे। पूज्य स्वामीजी तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग के प्रथम अध्यक्ष नियुक्त होने से पहले ही राजकीय महाविद्यालयों के स्नातकोत्तर संस्कृत-विभागों में इस प्रकार की त्रिविध पद्धति को कार्यान्वित करने में अभ्यस्त थे। महाकवि कालिदास ने श्रेष्ठ शिक्षक की परिभाषा देते हुए कहा है-

श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था
संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां
धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ।।

पूज्य स्वामी की संस्कृतवैदुषी अगाध थी और विद्यार्थियों में ज्ञान की संक्रान्ति (Transmission) में वे अतिकुशल थे, अतः यह निःसन्दिग्ध रूप से कहा जा सकता है, कि वे अपने अध्यापन-काल में राजस्थान के समस्त

संस्कृत- प्राध्यापकों में अग्रगण्य थे। संस्कृत के अध्यापन के लिए उनका समर्पण-भाव अलोकसामान्य था।

पूज्य स्वामी जी ने संस्कृतविभाग की स्नातकोत्तर कक्षाओं के अध्यापन - कार्य से अतिभारित होने पर भी पण्डित ओझाजी के 'पथ्यास्वस्ति' नामक ग्रन्थ की सन् 1968 में हिन्दीव्याख्या (विस्तृत प्राक्कथन सहित) लिख कर सम्पादित की । यह ग्रन्थ राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा सन् 1969 में प्रकाशित किया गया। संस्कृत के विद्वानों के सतत आग्रह के कारण 1996 में 'पथ्यास्वस्ति' के द्वितीय संस्करण का प्रकाशन किया गया। यह ग्रन्थ सभी विश्वविद्यालयों के संस्कृतव्याकरणशास्त्र के स्नातकोत्तर पाठयक्रम में निर्धारित होना चाहिए। स्वयं स्वामी जी ने उक्त ग्रन्थ के प्राक्कथन में विद्वानों से एतद्विषयक अनुरोध किया है। मैं यहाँ यह उल्लेख कर देना चाहता हूँ कि प्राक्कथन और हिन्दी-व्याख्या से संवलित 'पथ्यास्वस्ति' ग्रन्थ की मुद्रणयोग्य सुस्पष्ट हस्तलिपि (Press Ready Copy) गुर्वाज्ञा से मैंने सम्पन्न की थी। पूज्य स्वामी जी संस्कृत के सर्वतोमुखी अगाध वैदुष्य के कारण हम विद्यार्थियों को संस्कृत-पाण्डित्य के मूर्तरूप और शरीरबद्ध अध्यवसाय के रूप में प्रतीत होते थे। तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत-विद्यार्थियों के सामूहिक पूर्व सुकृत का ही फल था, कि पूज्य स्वामी जी नवीन स्नाकोत्तर संस्कृत-विभाग के प्रथम अध्यक्ष नियुक्त हुए।

पूज्य स्वामीजी की विलक्षण स्मरणशक्ति के कारण उनकी विद्या पुस्तकस्था न होकर पूर्णतया कण्ठस्था थी। उनको एम.ए. (संस्कृत) के पाठ्यग्रन्थ रसगङ्गाधर, साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश, तर्कभाषा, वेदान्तसार, सांख्यकारिका, मेघदूत आदि कण्ठस्थ थे, अतः वे कक्षाओं में ग्रन्थों के मूल पाठ को देखे बिना ही पढ़ाते थे। वे अनुवादरहित दुर्बोध दर्शनशास्त्रीय ग्रन्थों, भाष्यों और टीकाओं का तात्पर्यार्थ बतलाने में अतिकुशल तथा कुशाग्रबुद्धि थे। उनके शोधनिर्देशन में आठ शोधार्थियों ने संस्कृत में पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त की। उन्होंने षड्दर्शनी में अध्याय का स्वरूप, भामती नामक टीकाग्रन्थ का समालोचनात्मक अध्ययन तथा कालिदासीय कृतियों में दार्शनिक पृष्ठभूमि जैसे दर्शनशास्त्रीय दुरूह विषयों पर शोधकार्य सम्पन्न करवाया। मैंने पूज्य स्वामीजी के निर्देशन में क्रान्तिकारी नैयायिक भासर्वज्ञ के न्यायसार पर शोधकार्य सम्पन्न किया। न्यायसार के 500 वर्षों तक विलुप्त बृहदाकार स्वोपज्ञ टीका ग्रन्थ 'न्यायभूषणम्' के सन् 1968 में इदम्प्रथमतया प्रकाशित हो जाने के कारण 'न्यायसार' का समालोचनात्मक अध्ययन अत्यधिक अपेक्षित था।

प्रासंगिक रूप से यह उल्लेखनीय है, कि सन् 1972 में उपयुक्त शोधविषय के चयन के उद्देश्य से तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय के केन्द्रीय ग्रन्थालय में विभिन्न संस्कृत-ग्रन्थों का अवलोकन करते समय मुझे पण्डित ओझा

जी का गीताविज्ञानभाष्यम् भी प्राप्त हुआ। मैंने घर आ कर पूज्य गुरुवर्य स्वामीजी से पूछा - 'क्या गीताविज्ञानभाष्य पर शोधकार्य किया जा सकता है,' तो उन्होंने तत्काल कहा- 'क्यों नहीं'। वे जिसके लिए आदेशात्मक वाक्य कह देते थे, तो निर्णय हो जाता था। तत्पश्चात् पूज्य स्वामी जी ने जयपुर के मानवाश्रम विद्यापीठ से स्व. पण्डित मोतीलाल शास्त्री द्वारा रचित और अप्रकाशित कठोपनिषद्विज्ञानभाष्य के दो हस्तलिखित बड़े रजिस्टर लाकर मुझे कहा कि इस विज्ञानभाष्य के आधार पर कठोपनिषद् के समीक्षात्मक अध्ययन के लिये भी शोधकार्य किया जा सकता है। उन्होंने राजस्थान प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान के तत्कालीन निदेशक वेदविद् डॉ. फतहसिंह जी के निर्देशन में उस विषय पर शोधकार्य करने का आदेश दिया, परन्तु मैं उस विषय पर शोधकार्य में प्रवृत्त नहीं हो सका। वस्तुतः कारण यह था कि मैंने एम.ए. (संस्कृत) के उत्तरार्ध में भारतीय दर्शनशास्त्र का विशेष अध्ययन किया था, अतः मैं दर्शनशास्त्र के ही किसी उपयुक्त विषय पर पूज्य स्वामीजी के निर्देशन में शोधकार्य करना चाहता था, क्योंकि वे दर्शनशास्त्र के उद्भट विद्वान् थे।

तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय से सन् 1974 के दिसम्बर में सेवानिवृत्त होने के अनन्तर पूज्य स्वामी जी ने काषाय वस्त्र धारण कर लिए और पूर्वनिर्णयानुसार वे अखिल भारतवर्षीय उदासीन साधुसम्प्रदाय के प्रधान महामण्डलेश्वर वेदविद् श्री गङ्गेश्वरानन्द जी के साथ रह कर 8 वर्ष तक वैदिक ग्रन्थों के अनुवाद आदि कार्य में निरत रहे। उस कालावधि में भारत के विभिन्न नगरों में श्री गङ्गेश्वरानन्दजी के सान्निध्य में आयोजित व्याख्यान-कार्यक्रमों में पूज्य स्वामी जी ने वेदविज्ञानविषयक अनेक व्याख्यान दिये, जिनका सम्भवतः टेप रिकार्ड किया गया होगा। उन्होंने चतुर्मासावधियों में दादूपन्थी सन्त के रूप में आध्यात्मिक विषयों पर भी अनेक व्याख्यान दिये। पूज्य स्वामी जी ने अध्यापन की सम्पूर्ण कालावधि में संस्कृतकाव्यशास्त्र का भी अध्यापन किया था, अत. 'दुर्व्याख्याविषमूर्च्छित' संस्कृतकाव्यशास्त्र के उद्धार के लिए पूर्वरचित 'रससिद्धान्त की शास्त्रीय समीक्षा' नामक मौलिक ग्रन्थ को सन् 1983 में प्रकाशित किया। यह उल्लेखनीय है कि पूज्य स्वामी जी राजस्थान के संस्कृतविद्वानों में स्व. डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा, डॉ. कलानाथ शास्त्री 'देवर्षि' तथा अपने ज्येष्ठ शिष्य प्रोफेसर (डॉ.) मूलचन्द्र पाठक के संस्कृतवैदुष्य का अत्यधिक आदर करते थे और इन तीनों विद्वानों से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। उनकी इच्छा के अनुसार इन तीनों विद्वानों ने 'रससिद्धान्त की शास्त्रीय समीक्षा' ग्रन्थ के विषय में सम्मतियाँ लिखीं, जो ग्रन्थ के प्रारम्भ में प्रकाशित हैं।

पूज्य स्वामी जी के इस ग्रन्थ में प्रस्तुत उनके अतिसंक्षिप्त परिचय से यह ज्ञात होता है, कि उन्होंने

शतपथब्राह्मण के प्रथम काण्ड के छठे, सातवें, आठवें और नवम अध्यायों तथा द्वितीय काण्ड का स्वलिखित हिन्दी अनुवाद वेदवाचस्पति मोतीलाल शास्त्री के हिन्दी विज्ञानभाष्य के साथ सम्पादित किया। पूज्य स्वामी जी के वेदविज्ञानाधारित 'पुराणरहस्य' नामक लघु ग्रन्थ का राजस्थान पत्रिका द्वारा सन् १९८७ में प्रकाशन किया गया। इस ग्रन्थ को पढ़ने से मुझे ज्ञात हुआ, कि यह आकार में लघु होने पर भी पुराणों के रहस्यविज्ञान का प्रतिपादक होने के कारण भ्रान्तिनिवारक और महत्त्वपूर्ण है। सभी प्रबुद्ध पाठकों द्वारा इसका अध्ययन किया जाना चाहिए।

राजस्थान पत्रिका के रविवारीय संस्करणों में वेदविज्ञानविद् श्री कर्पूरचन्द्र कुलिश जी द्वारा प्रवर्तित वेदविज्ञानलेखमाला के अन्तर्गत पूज्य स्वामी जी के भी वेदविज्ञानविषयक अनेक लेख प्रकाशित हुए थे। उन्होंने पण्डित ओझाजी के 'छन्दःसमीक्षा' नामक ग्रन्थ की पाण्डुलिपि कहीं से प्राप्त की। जीवन के उपान्त्य (अन्तिम से पूर्ववर्ती) वर्ष अर्थात् सन् १९८९ में पूज्य स्वामी जी ने संक्षिप्त भाषानुवादमयी भूमिका लिख कर सम्पादन किया और राजस्थान संस्कृत अकादमी द्वारा उस ग्रन्थ का प्रकाशन किया गया। अकादमी के तत्कालीन अध्यक्ष महोदय ने 'प्रकाशकीय' में लिखा है – ''यह स्मरणीय है कि पुस्तक के प्रकाशन, पाण्डुलिपि निर्माण तथा प्रूफ संशोधन में सक्रिय सहयोग प्रदान करने लिए स्वामी जी के अनन्य प्रिय शिष्य वेदविज्ञानवेत्ता पं. अनन्तराम शर्मा, डॉ. नरेशचन्द्र पाठक तथा डॉ. शिवचरण गर्ग धन्यवाद के पात्र हैं''। पूज्य स्वामी जी पण्डित अनन्त शर्मा जी के वेदविज्ञानवैदुष्य से अत्यधिक प्रभावित थे।

पूज्य स्वामी जी ने 'छन्दःसमीक्षा' नाम ग्रन्थ के संक्षिप्त भाषानुवाद तथा सम्पादन के रूप में वेदविज्ञान के महायज्ञ में अन्तिम आहुति अर्पित की। यह ग्रन्थ समीक्षाचक्रवर्ती पण्डित ओझाजी के वेदाङ्गसमीक्षा नामक ग्रन्थविभाग के वाक्पदिका नामक उपविभाग के अन्तर्गत है। पूज्य स्वामीजी के संक्षिप्त भाषानुवाद से यह स्पष्ट प्रतीत होता है, कि वे वैदिक छन्दःशास्त्रविज्ञान में भी पारङ्गत थे। राजस्थान संस्कृत अकादमी के तत्कालीन अध्यक्ष महोदय ने 'प्रकाशकीय' में पूज्य स्वामी जी का उपकार मानते हुए कहा है – ''प्रस्तुत ग्रन्थ दीर्घावधि तक अनुपलब्धता के कारण प्रकाश में नहीं आ सका था, परन्तु संस्कृत-जगत् के सौभाग्य से दार्शनिकविद्वन्माला के सुमेरु, अनेक विषयों के मर्मज्ञ आचार्य तथा सम्मानित लेखक पूज्य स्वामीजी श्री सुरजनदास जी महाराज को इसकी एक प्रति कहीं से उपलब्ध हुई। ग्रन्थ को उपयोगी समझ कर उन्होंने संस्कृत अकादमी को इसके प्रकाशन हेतु प्रेषित किया। उत्तर में अकादमी के साग्रह निवेदन को स्वीकार कर स्वामी जी

ने अस्वस्थ होते हुए भी स्वयं इसका हिन्दी अनुवाद कर सम्पादित करने तथा अजमेर में ही प्रकाशित कराने का दायित्व अपने ऊपर लेते हुए हमारा बड़ा उपकार किया। इसके लिए उस महान् विभूति को शतसहस्रशः नमन''।

वेदविज्ञानविद् स्व. श्री कर्पूरचन्द्र कुलिश जी द्वारा प्रकाशित बृहदाकार चतुर्वेदसंहिता-ग्रंथ (काष्ठमयमञ्जूषानिहित) पूज्य स्वामी जी द्वारा संस्कृत में लिखित वेदरहस्योद्घाटक विस्तृत भूमिका से संवलित है। पूज्य स्वामी जी अगाध संस्कृतवैदुष्य, तेजस्विता, ब्रह्मवर्चस् स्नेह, सरलता आदि के कारण संस्कृतविद्वज्जनों के लिए समुद्र की तरह अधुष्य (Inaccessible) भी थे और अभिगम्य (Approachable) भी। तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय के संस्कृतविभाग में उनकी अध्यक्षता के काल में ही मैं अस्थायी और स्थायी संस्कृतव्याख्याता के रूप में नियुक्त हुआ। नवम्बर, १९८४ में सागर (मध्यप्रदेश) के डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय के संस्कृतविभाग में रीडर पद पर चयनित होने के पश्चात् मैं सागर में कार्यभार-ग्रहण करने से पहले पूज्य गुरुवर्य स्वामीजी की आज्ञा प्राप्त करने के लिए अजमेर गया था।

यह उल्लेखनीय है कि महाराणा मेवाड़ चैरिटेबल फाउण्डेशन, उदयपुर का 'महर्षि हारीत ऋषि सम्मान' पहली बार पूज्य स्वामी जी तथा उदयपुर के पण्डित गिरिधारीलाल जी को प्रदान किया गया था। पूज्य स्वामी जी के व्यक्तित्व, शास्त्रवैदुष्य तथा सक्रिय अध्यवसाय के विषय में रघुवंश का यह श्लोक पूर्णतया चरितार्थ होता है-

आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः।।

जिस प्रकार सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी के न्यायवैशेषिक के धुरन्धर विद्वान् न्यायपञ्चानन विश्वनाथ भट्टाचार्य ने राजीव नामक शिष्य के प्रति दया के अधीन होकर 'न्यायसिद्धान्तमुक्तावली' नामक स्वोपज्ञ टीका की रचना की, उसी प्रकार पूज्य स्वामी जी सम्पूर्ण अध्यापन-काल में दुर्बोध्य संस्कृतग्रन्थों का केवल अध्यापन ही नहीं कराते थे, अपितु शिष्यों के प्रति दया के अधीन होकर कठिन शास्त्रीय प्रश्नों के उत्तर भी लिखवाते थे। उनके अध्यापन-काल में कई दुर्बोध्य संस्कृत-ग्रन्थों की हिन्दी व्याख्याएँ थीं ही नहीं। इसलिए जिस प्रकार नैयायिकप्रवर विश्वनाथ भट्टाचार्य 'राजीवदयावशंवदः' थे, उसी प्रकार पूज्य स्वामी जी 'शिष्यदयावशंवदः'

थे। प्रारम्भ में दीर्घकाल तक दादू संस्कृत महाविद्यालय में शास्त्री और आचार्य कक्षाओं के विद्यार्थियों को पढ़ाने के कारण पूज्य स्वामी जी संस्कृतभाषा के माध्यम से अध्यापन में भी पूर्णतया दक्ष थे।

यह उल्लेखनीय है कि वेदविज्ञानविद् स्व. श्री कर्पूरचन्द्र कुलिश जी की सत्प्रेरणा से पण्डित मधुसूदन ओझा की वेदविज्ञानविषयक सारस्वत साधना को प्रकाश में लाने के उद्देश्य से राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर तथा तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग के संयुक्त तत्त्वावधान में फरवरी, १९९० में इदम्प्रथमतया आयोजित त्रिदिवसीय अखिल भारतीय विद्वत्सम्मेलन में पूज्य स्वामी जी का भी सान्निध्य प्राप्त हुआ था। उन्होंने एक से अधिक सत्रों की अध्यक्षता की थी और वेदविज्ञानविषयक तीन शोधपत्र भी प्रस्तुत किये थे। वे इस प्रकार हैं–

१. अत्रि ऋषि तथा अत्रिप्राण का निरूपण

२. वेद में विज्ञान

३. श्राद्धविज्ञान

उक्त सम्मेलन के समापन–समारोह के पश्चात् वेदविज्ञानविद् स्व. कर्पूरचन्द्र कुलिश जी की अध्यक्षता और पूज्य स्वामीजी के सान्निध्य में भावी कार्ययोजना के लिए आयोजित विद्वत्सभा में यह निर्णय किया गया कि जून, १९९० के प्रारम्भ में एक पञ्चदशदिवसीय वेदविज्ञान–कार्यशाला (Workshop) जयपुर में श्री कुलिश जी द्वारा आयोजित की जायेगी। दिनाङ्क १ जून, १९९० से १५ जून तक जयपुर में आयोजित वेदविज्ञानविषयक कार्यशाला में पूज्य स्वामीजी ने विभिन्न विषयों पर पन्द्रह व्याख्यान प्रस्तुत किये। इस प्रकार उन्होंने अपने जीवन में वेदविज्ञान के महायज्ञ में व्याख्यानरूपी अन्तिम आहुति अर्पित की। उस कार्यशाला की अवधि में पूज्य गुरुवर्य के सान्निध्य में रहने का मेरा अन्तिम अवसर था।

१५ जून, १९९० को आयोजित समापन समारोह में राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री भैंरोसिंह जी शेखावत ने श्री कर्पूरचन्द्र कुलिश जी, पूज्य स्वामी जी तथा विद्वत्समूह की उपस्थिति में जोधपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में 'पण्डित मधुसूदन ओझा शोधप्रकोष्ठ' की स्थापना की घोषणा की। यह मेरे अनेक जन्मोपार्जित सुकृत, विद्याभ्यास और सतत शास्त्रानुशीलन का ही फल था, कि मैं विश्व में इदम्प्रथमतया स्थापित पण्डित मधुसूदन ओझा शोधप्रकोष्ठ के प्रथम निदेशक के रूप में दिसम्बर, १९९१ में चयनित तथा

नियुक्त हुआ। सेवानिवृत्ति (२८ फरवरी, २००७) तक मैं असहाय एकाकी ही शोधप्रकोष्ठ के ग्रन्थप्रकाशन आदि समस्त कार्यों को सम्पन्न करता हुआ वेदविज्ञानविषयक सारस्वत साधना में पूर्ण मनोयोग और संकल्पोत्साह के साथ तल्लीन रहा। पूज्य स्वामी जी को यह पूर्वाभास नहीं हो सका, कि उनका ही एक शिष्य शोधप्रकोष्ठ का प्रथम निदेशक नियुक्त होकर वेदविज्ञानविषयक सारस्वत साधना में सम्प्रवृत्त होगा। मैंने निदेशक के रूप में कार्य करते हुए वेदविज्ञान के दस ग्रन्थों का प्रकाशन किया था, जिनमें से चार ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद, टिप्पणीभाग तथा भूमिकादि से युक्त हैं, पाँच ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद तथा भूमिकादि से युक्त हैं और एक ग्रन्थ पण्डित ओझा जी के 'महर्षिकुलवैभवम्' (ग्रन्थाङ्क ६) से सम्बन्धित शोधलेखों का संग्रह ग्रन्थ है।

पूज्य स्वामी जी शास्त्रों के स्मरण, ग्रहण और धारण की अद्भुत शक्ति के कारण वेदविज्ञान तथा अन्य शास्त्रीय विषयों पर बिना किसी तैयारी, पूर्व लेखन तथा लिखित बिन्दुओं के स्वतंत्र रूप से (Extempore) व्याख्यान देते थे। वैसा सर्वतोमुखी संस्कृतवैदुष्य विरले महामनीषी को ही प्राप्त होता है।

पूर्वोक्त कार्यशाला की परिसमाप्ति के पश्चात् जयपुर से अजमेर लौटने पर वे अत्यधिक अस्वस्थ हो गए थे और तीन दिन तक रुग्णावस्था के पश्चात् ३ अगस्त १९९० को वह विभूति ब्रह्मलीन हो गयी। पूज्य स्वामी जी की आध्यात्मिक साधना की यह विशेषता थी, कि उन्होंने यावज्जीवन ब्राह्म मुहूर्त में उठ कर नियमित रूप से मालाजाप तथा दादूवाणी का पाठ किया। मैंने यह देखा है कि जीवन के अन्तिम २-३ वर्षों में वे ज्ञानगुणसागर हनुमान जी की बड़ी प्रतिमा (तस्वीर) के समक्ष ध्यानस्थ होकर लगभग एक घण्टे तक हनुमद्भक्ति में तल्लीन रहते थे। जयपुर की वेदविज्ञानविषयक कार्यशाला में वे हनुमान जी की तस्वीर को साथ में लाये थे। यह भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि वे तुलनात्मक तथा समीक्षात्मक विवेचन की आधुनिक शोधपद्धति में पारंगत थे, जिसके कारण उन्होंने तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के शोधविद्यार्थियों का दक्षतापूर्वक मार्ग-निर्देशन किया। उनका 'रससिद्धान्त की शास्त्रीय समीक्षा' नामक ग्रन्थ तुलनात्मक और समीक्षात्मक पद्धति से रचित एक मौलिक शोधग्रन्थ है। यह उल्लेखनीय है कि जब सत्तर के दशक में राजस्थान के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा सैकण्डरी स्कूल (हाई स्कूल) के पाठ्यक्रम में तृतीय भाषा के रूप में संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य किया गया, तब पहली बार संस्कृत-पुस्तक (अनुभवाधारित सुबोध व्याकरण सहित) पूज्य स्वामी जी ने ही संकलित और सम्पादित की थी।

श्री वीरेश्वर शास्त्री द्राविड़

श्री द्राविड़ महोदय भारत के सुविख्यात विद्वान्, सर्वशास्त्रपारंगत, अपने विषयों के व्याख्याता, सफल अध्यापक, श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठाननिरत, राजवर्ग से सम्मानित, लोकमान्य, महर्षिकल्प एक महात्मा व्यक्ति थे। आपकी पितृ-परम्परा में अनेक पीढ़ियों तक सोमयाजी श्रौत्रिय विद्वान् हुए हैं। आपने भाद्रपद शुक्ला सप्तमी (श्री राधाष्टमी) शनिवार, संवत् 1916 को अर्द्धरात्रि के पश्चात् दीक्षितों के बड़म (ओत्तर) संकेतित द्राविड़ कुल तथा मूलकाड कांचीमण्डल, दक्षिण भारत में जन्म लिया। आपकी माता का नाम लक्ष्मी तथा पिता का नाम सुब्रह्मण्य दीक्षित था। आपका वत्स गौत्र, भार्गव, च्यवन, अम्बान्, और्व और जमदग्नि- ये पाँच प्रवर थे। आप कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय शाखाध्यायी विद्वान् थे।

दक्षिणपथ कांचीमण्डल में मूलकाड नाम से एक प्रसिद्ध ग्राम है। यहाँ श्री वरुणाचल दीक्षित, यज्ञेश्वर दीक्षित, कृष्ण दीक्षित, सुब्रह्मण्य दीक्षित आदि अनेक प्रसिद्ध विद्वानों ने जन्म लिया था। श्री यज्ञेश्वर दीक्षित तक 25 पीढ़ियों में सभी अनुवंशज सोमयाजी थे। आपके दो पुत्र श्री कृष्ण दीक्षित तथा श्री सुब्रह्मण्य दीक्षित उपनयंन पश्चात् घनपाठियों के विद्यालय में चार वर्ष तक तैत्तिरीय संहिता, अन्य ब्राह्मण ग्रन्थ व आरण्यक ग्रन्थों का अध्ययन कर कांचीनगर में रथोत्सव देखने गये थे। यहीं से चलपट्टन (समुद्र के समीप विद्यमान नगर) तैलंग, उत्कल, बंग, मिथिला, पाटलिपुत्र, गया तथा अवध होते हुए मण्डली सहित काशी पहुँचे। काशी में गंगा के सोमेश्वर घाट पर विद्यमान मान मन्दिर में आपने विश्राम किया और वहीं रहते हुए घनान्तवेद, न्याय, साहित्य आदि विषयों का अध्ययन किया। जीविका की दृष्टि से आपने यहीं ऋत्विक् कर्म प्रारम्भ किया। श्रीअप्पय दीक्षित के छठे अनुवंशज श्री हरिशंकर दीक्षित की दौहित्री तथा बज्रटंक कृष्ण शास्त्री की पुत्री लक्ष्मी के साथ आपका पाणिग्रहण हुआ। आपके दो पुत्रियों में से ज्येष्ठ पुत्री का विवाह आठ वर्ष की अवस्था में ही जयपुर राजगुरु मन्वाजी श्री कामनाथजी के साथ सम्पन्न हुआ। दो कन्याओं के जन्म लेने के उपरान्त श्री सुब्रह्मण्य दीक्षित अपने परिव्राजक गुरु के आदेश से आत्मवीरेश्वर महादेव की उपासना में लीन हुए। स्कन्दपुराणान्तर्गत काशी खण्ड में प्रोक्त वीरेश्वर स्तोत्र का पाठ करने से दो वर्ष पश्चात् आपके पुत्र उत्पन्न हुआ और आपने उसका नाम 'वीरेश्वर' रखा। जन्म के वात् आपके नेत्र मुंदे हुए थे, जो कुलदेव के पूजन का व्रत लेने के पश्चात् खुले थे। पश्चात् बाल्यकाल में आप उदर रोग से पीड़ित रहते थे, जिसे श्रीविधु बाबू बंगवैद्य तथा श्री कृष्णशास्त्री तैलंग ने उपचार कर शान्त किया था। आपके नाना का नाम भी सुब्रह्मण्य शास्त्री था, जिनके पुत्र श्री नारायण शास्त्री बहुत विख्यात विद्वान् हुए हैं।

श्री द्राविड़ की दूसरी भगिनी सरस्वती का पाणिग्रहण भी जयपुर में ही श्री विश्वनाथ शास्त्री के साथ सम्पन्न हुआ था। आप श्री कामनाथ शास्त्री की बड़ी बहन मंगला देवी और उसके पति श्री साम्ब शास्त्री के मध्यम पुत्र थे अर्थात् श्री कामनाथ शास्त्री के भागिनेय थे। श्री कामनाथ शास्त्री व उनकी पत्नी श्रीमती गंगादेवी ने सन्तान न होने से श्री विश्वनाथ शास्त्री को अपना उत्तराधिकारी (दत्तक पुत्र) बना लिया था। जैसाकि बताया जा चुका है, श्रीमती गंगादेवी भी सुब्रह्मण्य शास्त्री दीक्षित की ज्येष्ठ पुत्री थी और ये जयपुर महाराज की राजमहिषी को मन्त्रोपदेश करने के कारण गुराणीजी के नाम से प्रसिद्ध थीं।

पाँच वर्ष की अवस्था में मातुल श्री पापा शास्त्री (श्री नारायण शास्त्री) ने आपका विद्यारम्भ संस्कार किया। अपनी दोनों पुत्रियों के आग्रह पर आपकी माता श्रीमती लक्ष्मी दीक्षित आपको लेकर जयपुर आ गई। आपकी छोटी बहिन सरस्वती देवी अल्पवयस्का थी; अतः माता उनकी देख-रेख के लिए जयपुर में तीन वर्ष तक रहीं। इन वर्षों में श्री शास्त्री ने संस्कृत कालेज, जयपुर के अध्यक्ष श्री रामभजजी सारस्वत के पास अमरकोष, सिद्धान्तकौमुदी आदि ग्रन्थों का अध्ययन प्रारम्भ किया। उपनयन संस्कार के लिए माता आपको पुनः काशी ले गई। वहाँ अष्टम वर्ष में वैशाख शुक्ला द्वादशी सम्वत् 1924 को आपका उपनयन हुआ। आपने वेदाध्ययन प्रारम्भ किया। जब आपकी बड़ी बहन का सीमन्तोत्सव हुआ, तब आप पुनः जयपुर आये, परन्तु अधिक न रह सके और अपने मातुल पुत्र के उपनयन व मातुल पुत्री के विवाह पर पुनः काशी लौट गये। श्री साम्ब शास्त्री ने आपके अध्ययन की व्यवस्था की और आपको श्री नैने बालकृष्ण शास्त्री भट्ट की पाठशाला में प्रविष्ट करा दिया था। वहाँ छ: मास में केवल तीन प्रपाठक का अध्ययन ही सम्पन्न हो सका था। इससे असन्तुष्ट होकर श्री पापा शास्त्री ने आपको महाविद्वान् श्रीराम शास्त्री खरे की पाठशाला में प्रविष्ट करा दिया। वेद के विद्वान श्री शंकर नारायण शास्त्री द्राविड़ के पास आपने वेदाध्ययन किया। यहाँ से अध्ययन कर गुरुजी के वार्धक्य के कारण आप उन्हीं के आदेश से सरयूपारीण विद्वान् श्री यागेश्वर शर्मा के पास जाकर अध्ययन करने लगे। इसके पश्चात् आपके माता-पिता का कुछ ही दिनों के अन्तर पर निधन हो जाने से आप के अध्ययन में विघ्न उपस्थित हो गया। फिर भी गुरुजी की प्रेरणा से कुछ अध्ययन चलता रहा।'

कौण्डिन्यगोत्री बोधायनसूत्रानुयायी, क्रमान्तवेदपाठी, व्याकरण तथा साहित्य के विद्वान पं. श्री राजेश्वर शास्त्री की कन्या भवानी से आपका विवाह वैशाख कृष्णा 2 सम्वत् 1929 में सम्पन्न हुआ। श्री राजेश्वर शास्त्री 'नागेश शास्त्री' के नाम से प्रसिद्ध थे तथा श्री शंकर शास्त्री एवं मैसूर राज्य के अन्नसत्राध्यक्ष श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री के वंशज थे। आपके विवाह में आपकी भगिनी गंगा देवी ने जयपुर महारानी से 1500 रु. की आर्थिक सहायता दिलवाई थी। विवाह के उपरान्त आपका अध्ययन पुनः प्रारम्भ हुआ। आप पं. योगेश्वर शास्त्री के पास विभिन्न विषयों का अध्ययन करने के लिए नियमित रूप से जाने लगे। आपके सहाध्यायियों में मातुलपुत्र के अतिरिक्त श्री गणेश शास्त्री गाडगिल, श्री भिक्षु शास्त्री मौनी तथा श्री राम शास्त्री तैलंग के नाम उल्लेखनीय हैं। आपने साढ़े चार वर्षों में सिद्धान्तकौमुदी पर पूर्णाधिकार कर

लिया और फिर मनोरमा, अर्थसंग्रह, हेमवती, परिभाषेन्दुशेखर, गोविन्दाचार्य कृत चन्द्रिका व्याख्या सहित शब्देन्दुशेखर, कैयट कृत टीका सहित नवाह्निकभाष्य और अंगाधिकारभाष्य पर पूर्णाधिकार प्राप्त कर लिया। गुरुजी के घर अध्ययन करने के अतिरिक्त आप मामाजी के घर पर भी स्वतन्त्र रूप से अध्ययन किया करते थे, जिनमें आपने सम्पूर्ण अष्टाध्यायी, तर्कसंग्रह, न्यायबोधिनी, माघकाव्य, कुमारसम्भव, मेघदूत, शाकुन्तल, उत्तररामचरित, भारतचम्पू, नृसिंहचम्पू एवं रामायणचम्पू आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। साथ ही नैषध, माथुरी पंचलक्षणीया जागदीशी, सिंहव्याघ्रलक्षण, कुवलयानन्द, काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का भी अध्ययन किया। इसी प्रकार श्री बालशास्त्री रानाडे से आपने व्युत्पत्तिवाद, शक्तिवाद, सपरिष्कार परिभाषेन्दुशेखर, शब्देन्दुशेखर, विषयतावा, ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य का अध्ययन किया।

अध्ययनकाल में ही आपकी कनिष्ठ भगिनी सरस्वती का अचानक देहान्त हो गया और आपकी पत्नी भी अपस्मार रोग से आक्रान्त हो गई। बहुत उपचार करने के पश्चात् भी रोग शान्त न हुआ और दिवंगत हो गई। अनेक सांसारिक कष्टों को सहन करते हुए भी आपने अपना अध्ययन क्रम न छोड़ा और जयपुर चले आये। यहाँ पहुँचने पर आपने अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम आप संस्कृत कालेज, जयपुर में साहित्याध्यापक नियुक्त हुए, जहाँ आपने 8 अगस्त, 1896 तक अध्यापन किया।। इसके पश्चात् आप महाराजा कालेज, जयपुर में संस्कृत के प्राध्यापक रहे और वहीं से सेवानिवृत्त हुए। म.म. पं. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने जो आपका उल्लेख किया है, उससे ज्ञात होता है कि कालान्तर में शिक्षा विभाग के अधिकारी आपकी सलाह से ही कार्य किया करते थे। तत्कालीन निदेशक श्री मक्खनलालजी आप से बहुत अधिक प्रभावित थे और सम्मान किया करते थे। अवकाश प्राप्त करने पर आप अपने घर पर ही अनेक व्यक्तियों को निःशुल्क अध्यापन किया करते थे। आपके पास स्वतन्त्र रूप से अध्ययन करने वाले अनेक विद्वानों में पं. श्री जगदीश शर्मा दाधीच, भूतपूर्व साहित्य प्राध्यापक, संस्कृत कालेज, जयपुर का नाम उल्लेखनीय है, जो आपके द्वारा संस्थापित वीरेश्वर पुस्तकालय के अवैतनिक मंत्री रह चुके हैं। आपने काशी तथा जयपुर में अपने नाम से एक पुस्तकालय की स्थापना की थी, जिसका नाम वीरेश्वर पुस्तकालय है। आपके रचनात्मक कार्य के सम्बन्ध में- (1) श्रीधरी (शब्देन्दुशेखर की टीका), (2) विषमी (शब्देन्दुशेखर की टीका), विवरण (कैयट महाभाष्य का प्रथम व द्वितीय अध्याय) और भोज की सरस्वती कंठाभरण आदि ग्रन्थों का सम्पादन किया था ऐसा उल्लेख मिलता है। इनमें सरस्वती कंठाभरण वैशाख शुक्ला अष्टमी संवत् 1943 को जैन प्रभाकर मुद्रणालय, काशी से प्रकाशित है। आप अत्यन्त प्रतिभावान्, वैदुष्यसम्पन्न, शान्त विद्वान् थे। आपका अप्रकाशित रचनात्मक कार्य अब उपलब्ध नहीं है।

श्री कलानाथ शास्त्री

प्रवर्तमान संस्कृत-संस्कृति सेवकों में युवा श्री शास्त्री का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आप वर्तमान युग के सुप्रसिद्ध विद्वान स्वर्गीय भट्ट श्री मथुरा नाथ शास्त्री के ज्येष्ठ पुत्र हैं और आपका जन्म 15 जुलाई, 1936 को जयपुर नगर में हुआ है। आप प्राच्य एवं प्रतीच्य-उभयविध शिक्षा निष्णात हैं। जहाँ एक ओर आपने व्याकरण विषय से सन् 1948 ई. में उपाध्याय परीक्षा, साहित्य विषय से 1950 ई. में शास्त्री तथा साहित्य विषय से ही 1952 ई. में आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की, वहाँ दूसरी ओर सन् 1955 ई. में बी.ए. तथा 1957 ई. में अंग्रेजी विषय में एम.ए. परीक्षा उत्तीर्ण की है। आपको संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा पर पूर्ण अधिकार है। आपने राजस्थान सरकार के भाषा निदेशालय में निदेशक के रूप में कार्य किया है।

आप सुप्रसिद्ध तैलंगभट्ट कवि कलानिधि श्री कृष्ण भट्ट के वर्तमान वंशज हैं, जो जयपुर संस्थापक सवाई जयसिंह द्वितीय के समय जयपुर आये थे और राज-सम्मानित थे। आप का वंश-वृक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

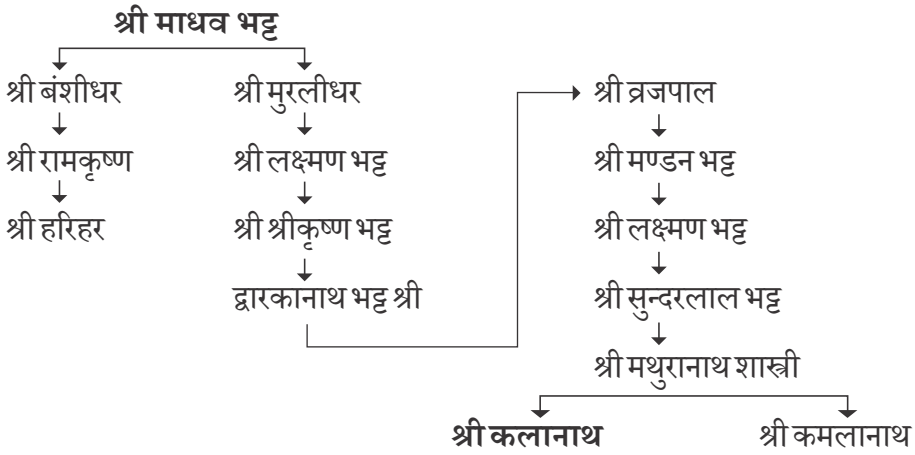

आपके पूर्वज देवर्षि की उपाधि से विभूषित रहे हैं, जिसका उपयोग अब तक करते आ रहे हैं। उपर्युक्त वंशावलि में उल्लिखित विद्वानों में श्री हरिहर, श्री श्रीकृष्ण शर्मा, श्री द्वारकानाथ, आदि संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान्

हुए हैं, श्री ब्रजपाल, श्री मण्डन प्रभृति विद्वान् ब्रजभाषा और हिन्दी क्षेत्र में विख्यात रहे हैं। श्री मथुरानाथ शास्त्री वर्तमान युग के उल्लेखनीय विद्वान् थे, जिनका हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था।'

आपने भारतीय लिपियों पर अनुसंधान किया तथा छात्रावस्था से ही काव्य लेखन, भाषण तथा प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों से अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया। राजस्थान विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. उपाधि लेकर ये वहीं अंग्रेजी के प्राध्यापक हो गये। ये बाल्यकाल में संस्कृत में ही वार्तालाप करते थे। 9 वर्ष की आयु में 1945 में अ.भा.सं.सा. सम्मेलन के 18 वें अधिवेशन में संस्कृत में व्याख्यान देकर इन्होंने श्रोताओं को चकित कर दिया था। 1957 से 1965 तक अंग्रेजी में प्राध्यापक रहने के बाद राज्य सरकार के भाषा विभाग में सहायक निदेशक, उपनिदेशक तथा निदेशक आदि पदों को सुशोभित किया, राजकीय महाविद्यालयों में प्रधानाचार्य भी रहे। 1976 से 18 वर्षों तक भाषा विभाग में निदेशक रहकर 1994 में सेवानिवृत्त हुए, इसी बीच 1991 से 1993 के बीच ये संस्कृत शिक्षा निदेशक भी रहे। केन्द्रीय साहित्य अकादमी के संस्कृत सलाहकार (2003-2007) तथा नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया के ट्रस्टी सदस्य (2003-2006) भी रहे।

1995 से 1998 तक राजस्थान संस्कृत अकादमी के अध्यक्ष तथा अन्य अनेक साहित्यसेवी संस्थाओं के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सदस्य आदि के रूप में इन्होंने संस्कृत, हिन्दी, ब्रजभाषा आदि को भरपूर योगदान दिया। आप अध्यक्ष, आधुनिक संस्कृत पीठ, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय के पद पर फरवरी, 2007 में नियुक्त हुए।

आकाशवाणी जयपुर केन्द्र की स्थापना (1955) से ही आकाशवाणी केन्द्र से संस्कृत नाटकों और वार्ताओं के प्रसारण द्वारा संस्कृत के प्रसार में इनके प्रयत्न सुविदित हैं। दूरदर्शन तथा आकाशवाणी के संस्कृत कार्यक्रमों द्वारा संस्कृत को मीडिया कार्यक्रमों तथा छोटे पर्दे पर लाने में इनका योगदान स्मरणीय है। इन्होंने संस्कृत, प्राकृत आदि के ग्रन्थों का अंग्रेजी में, अंग्रेजी ग्रन्थों का संस्कृत और हिन्दी में अनुवाद कर भाषाओं के सेतु का कार्य किया है जो इतिहास में अभिलिखित है।

इलाहाबाद में क्षेत्रेशचंद्र चट्टोपाध्याय स्मारक भाषण (2000 ई.), जयपुर में गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा स्मारक भाषण (95-97), बीकानेर में विद्याधर शास्त्री स्मारक भाषण (98), लक्ष्मणगढ़ में नन्दकुमार शास्त्री स्मृति व्याख्यान (99), विष्णुचन्द्र श्रीवास्तव स्मारक भाषण (उदयपुर विश्वविद्यालय 2002), बाटड़ व्याख्यान, सीकर (2009), मोतीलाल शास्त्री स्मारक व्याख्यान, (नई दिल्ली 2009) मंडन मिश्र स्मारक व्याख्यान, तथा दीक्षान्त

भाषण, (ला.ब.शा.सं. विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2010), तथा जयपुर, सीकर, नई दिल्ली आदि में दिए गए विशिष्ट भाषणों द्वारा इन्होंने अनेक अछूते विषयों का तलस्पर्शी विवेचन किया है। इनकी साहित्य सर्जना का कुछ विवरण संलग्न है।

ग्रन्थ लेखन

देवर्षि कलानाथ शास्त्री के कुछ प्रकाशित ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है -

संस्कृत में लिखित ग्रन्थ

- विद्वज्जनचरितामृतम् (जीवनी संग्रह, दिल्ली 1982)
- कथानकवल्ली (कथा संग्रह, जयपुर 1987)
- सुधीजनवृत्तम् (जीवनी संग्रह, जयपुर 1997)
- संस्कृत-नाट्यवल्लरी (नाटक संग्रह, जयपुर 1999)
- आख्यानवल्लरी (उपन्यास, कथा, निबन्ध संग्रह, जयपुर 2002)
- आधुनिकसंस्कृतसाहित्येतिहासः (आधुनिक संस्कृत लेखन का विवरण, जयपुर 2003)
- संस्कृत कविता वल्लरी (काव्य संग्रह, जयपुर 2008)
- जीवनस्य पाथेयम् (उपन्यास 2003)
- ललित कथा कल्पवल्ली (2012)

हिन्दी में लिखित ग्रन्थ

- संस्कृति के वातायन (जयपुर 1984)
- भारतीय संस्कृतिः आधार और परिवेश (जयपुर 1989)
- संस्कृत साहित्य का इतिहास (जयपुर 1995, 2009)
- आधुनिक काल का संस्कृत गद्य साहित्य (दिल्ली 1995)
- आधुनिक संस्कृत साहित्य : एक व्यापक दृष्टिपात (इलाहाबाद, 2001)

- जयपुर की संस्कृत परम्परा (जयपुर 2000)
- मानक हिन्दी का स्वरूप (दिल्ली 2002) (जयपुर, 2010)
- संस्कृत के गौरव शिखर (दिल्ली 1998)
- राजभाषा हिन्दी : विविध पक्ष (बीकानेर 2003)
- वैदिक वाक्य में भारतीय संस्कृति (बीकानेर 2003)
- भारतीय संस्कृति स्वरूप और सिद्धान्त (जयपुर 2003)
- साहित्य चिन्तन (जयपुर 2005)
- संस्कृत के युगपुरुष मंजुनाथ (2004)
- बोधकथाएँ (2012)

संस्कृत में संपादित ग्रन्थ

- संस्कृतकल्पतरुः (शोध संग्रह, जयपुर 1972)
- गीर्वाणगिरागौरवम् (भट्टश्रीमथुरानाथ शास्त्री का भाषाशास्त्रीय ग्रन्थ, जयपुर 1987)
- प्रबन्धपारिजातः (भट्ट मथुरानाथ शास्त्री के निबन्धों का संकलन, जयपुर 1988) पाञ्चलहर्यः (जगन्नाथ पंडितराज का स्तोत्र संग्रह, संस्कृत टीका, हिन्दी अनुवाद, समीक्षा सहित, जयपुर 1987)
- वीरेश्वरप्रत्यभिज्ञानम् (पं. जगदीश शर्मा लिखित जीवनी, जयपुर 1995)
- इन्द्रविजयः (पं. मधुसूदन ओझाकृत वेदेतिहासग्रन्थ, जोधपुर 1996)
- नवरत्ननीतिरचनावली (गिरिधर शर्मा नवरत्न की नीतिकविता, जयपुर 1985)
- रामचरिताब्धिरत्नम् (पं. नित्यानन्द शास्त्री का महाकाव्य, कलकत्ता, 2003)
- विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तः (स्वामी भगवदाचार्य रचित वेदान्तग्रन्थ, रेवासा 2003)
- मनुनाथवाग्वैजयन्ती (जयपुर 2007)
- मञ्जुनाथग्रन्थावली 5 खण्ड (नई दिल्ली 20090:2011)
- आचार्यविजयः (जयपुर 2011)

- भट्टमथुरानाथस्य काव्यशास्त्रीया निबन्धाः (नई दिल्ली 2011)
- जयपुरवैभवम् (जयपुर 2009)

हिन्दी में संपादित ग्रन्थ

- प्रशासन शब्दावली (जयपुर 1971)
- पादनाम शब्दावली (जयपुर, 1973)
- हिन्दी प्रयोग मार्गदर्शिका (जयपुर 1983)
- तथा भाषा विभाग के 18 से अधिक अन्य ग्रन्थ
- वेदमनीषी डॉ. फतहसिंह (उदयपुर 1977)
- कविपुण्डरीक संपूर्णदत्त मिश्र (जयपुर 1998)
- इन्द्रधनुष की छटा (हिन्दी विविधा, उदयपुर 2001)
- पां. झाबरमल शर्मा, पं. रामानन्द तिवारी भारतीनन्दन, पं. नवलकिशोर कांकर, पं. नन्दकुमार शास्त्री, पं. वृद्धिचन्द्र शास्त्री, पं. युगलकिशोर चतुर्वेदी, पं. जगदीश शर्मा, पं. गोपालनारायण बहुरा, मोहनलाल सुखाडिया, वैदिक शिवदत्त जोशी, श्रीरामप्रकाश स्वामी आदि के अभिनन्दन ग्रन्थ, स्मृतिग्रन्थ आदि, कोटा खुला विश्वविद्यालय के संस्कृत एवं पत्रकारिता पाठ्यक्रमों के पाठ, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी के दर्शन एवं भाषाविषयक ग्रन्थ तथा विभिन्न स्मारिकाएँ संपादित और अनेक ग्रन्थों और पत्रिकाओं के संपादक मंडल के सदस्य के रूप में कार्य।

अंग्रेजी में ग्रन्छ

- पोयट्री ऑफ जगन्नाथ पंडितराज (जयपुर 1988)

अनूदित ग्रन्थ - अंग्रेजी से हिन्दी में

- दर्शन के सौ वर्ष (जॉन पासमोर लिखित - हंड्रेड इयर्स आफ फिलासफी का अनुवाद (जयपुर 1966,1987)
- भारतीय दर्शन का इतिहास (सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त लिखित - हिस्ट्री आफ इंडियन फिलासफी का अनुवाद, जयपुर, 1978, 1988, 1998)

अंग्रेजी से संस्कृत में

- अर्वाचीनं संस्कृतसाहित्यम् (कृष्णमाचारियर लिखित - हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर के अन्तिम खण्ड का अनुवाद (1954-1960) संस्कृत से हिन्दी में -
- पंडितराज जगन्नाथ के स्तोत्रकाव्य (पांच लहरियों) का अनुवाद, (जयपुर 1988)
- मेघदूतम् (धारावाहिक रेडियो रूपक, आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित 1981 से 1993)
- मालतीमाधवम्, सुधालहरी, पंचस्तवी आदि कालजयी कृतियों के हिन्दी रूपान्तर आकाशवाणी से प्रसारित (1957-1983)
- गीतगोविन्दम् (नृत्यनाटिका का आलेख, दूरदर्शन के विभिन्न चेनलों से प्रसारित (1995 से आज तक)

प्राकृत से अंग्रेजी में

- इसिभासियाई (ऋषिभाषितानि सूत्राणि, जयपुर 1988)

हिन्दी और राजस्थानी से अंग्रेजी में

- राजस्थानी कहानियों का अनुवाद (इंडियन लिटरेचर, दिल्ली 1980 तथा प्रतिभा इंडिया, दिल्ली 2005-6)
- हिन्दी कविताओं का अनुवाद (पोयट, मद्रास, 1974)
- रामानन्द : द पायोनियर आफ रामभक्ति (बनारस 2009)

पत्रकारिता

- संस्कृत में भारती, स्वरमंगला, वैजयन्ती, वयम् (2007 से) आदि पत्रिकाओं के तथा हिन्दी में आलोक (1954), भाषा परिचय (1972-1994), शिक्षा संवाद (1990-94) दृक् (1999) आदि पत्रिकाओं के संपादन द्वारा साहित्यिक पत्रकारिता को योगदान।

व्याख्यान

800 से अधिक सम्मेलनों, संगोष्ठियों, सभाओं, सत्रों आदि में मुख्य अतिथि, अध्यक्ष, निर्णायक, वक्ता आदि के रूप में भाग लिया। राजस्थान विश्वविद्यालय आदि के एकेडेमिक स्टाफ कालेजों, अधिकारी

प्रशिक्षणालय, राजस्थान शासन, विभिन्न संस्थाओं के प्रशिक्षण केन्द्रों आदि में भाषा शास्त्र, राजभाषा, अनुवाद, संस्कृत भाषा तथा अन्य विषयों पर व्याख्यान हेतु आमंत्रण पर प्रशिक्षणार्थ 800 से अधिक भाषण दिए।

प्रसारण

संस्कृत भाषा को लोकप्रिय बनाने हेतु संस्कृत माध्यम से परिचर्चा, काव्यपाठ आदि के कार्यक्रम आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से प्रसारित, अक्षरा (दूरदर्शन-जयपुर) के संयोजक के रूप में कार्य (1989 से निरन्तर)

संस्कृत नाटक एवं वार्ताएँ

लेखन

1. संस्कृत रत्नाकर, भारती आदि संस्कृत पत्रिकाओं के लिए विश्वसमाचार, शब्दज्ञान, साहित्य समीक्षा आदि के नियमित स्तंभों में संस्कृत लेखन।

2. विश्वसंस्कृतम्, संस्कृतप्रतिभा, गुरुकुल पत्रिका, संस्कृतरत्नाकर, शोधप्रभा, संगमनी, भारती, दूर्वा,विश्वदीप दिव्य संदेश, संस्कृतरंगः आदि पत्र पत्रिकाओं में तथा स्मृतिग्रन्थों, शोधग्रन्थों, अभिनन्दनग्रन्थों आदि में 70 शोध लेख, 280 से अधिक लेख, कविताएं नाटक आदि संस्कृत में प्रकाशित (1948 से अब तक)

3. संस्कृत कहानियां - विभिन्न कथा संकलनों में संकलित, भारतीय ज्ञानपीठ आदि से संस्कृत कहानियों के अनुवाद प्रकाशित। संस्कृत वाङ्गय, भारतीय संस्कृति आदि से संबद्ध विषयों पर 100 से अधिक शोधलेख हिन्दी में सम्मेलन पत्रिका (इलाहाबाद) गुरुकुल पत्रिका (कांगड़ी), भाषा (दिल्ली), सप्तसिंधु (चंडीगढ़), विश्वम्भरा (बीकानेर), अध्ययन अनुसंधान पत्रिका (जयपुर) तथा शोधग्रन्थों में प्रकाशित। 900 से अधिक विभिन्न विषयक लेख हिन्दी में कादंबिनी, धर्मगुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तार, जनसत्ता, मधुमती, नवज्योति, संस्कृति, नवभारत टाइम्स, हिन्दुस्तान, दैनिक भास्कर, राजस्थान पत्रिका, दक्षिण समाचार आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित।

4. 800 से अधिक पुस्तकों की भूमिकाएँ, समीक्षाएँ लिखीं।

परामर्श

राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर की कुलपति चयन समिति के अध्यक्ष के रूप में (2002 एवं

2005), केन्द्रीय संस्कृत बोर्ड के सदस्य के रूप में (1999- 2002), राजस्थान संस्कृत सलाहकार बोर्ड के सदस्य के रूप में (1989 से अब तक), विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा माध्यमिक शिक्षा बोर्ड - राजस्थान की संस्कृत समितियों के सदस्य के रूपमें, राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर में राज्यपाल के प्रतिनिधि के रूप में (2001 से 2005) तथा 60 से अधिक संस्कृत सेवी संस्थाओं के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, परामर्शक अथवा सदस्य के रूप में ये निरन्तर संस्कृत सेवा में निरत हैं। राजस्थान शासन हिन्दी विधायी समिति के स्थायी सदस्य के रूप में (1979 से निरन्तर) भारत सरकार के शब्दावली आयोग की शब्द संकलन समितियों के सदस्य के रूप में (1980 से निरन्तर), पत्रकारिता विश्वविद्यालय भोपाल की शासी परिषद् के सदस्य के रूप में (1990-2000), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी शासी परिषद् के सदस्य के रूप में (1993-2000) राजस्थान संस्कृत अकादमी, साहित्य अकादमी, ब्रजभाषा अकादमी आदि की महासमितियों के सदस्य के रूप में, राजस्थान सरकार की विकास समिति, पुस्तक चयन समिति, शब्दावली समिति आदि के सदस्य के रूप में, राजस्थान लोक सेवा आयोग तथा राजस्थान स्थित विभिन्न विश्वविद्यालयों में विभिन्न विषयों के परीक्षक एवं चयनसमिति के सदस्य के रूप में, देश की विभिन्न भाषा अकादमियों तथा संस्थानों के पुरस्कारों हेतु निर्णायक के रूप में तथा 40 से अधिक भाषा, शिक्षा और समाज सेवा के क्षेत्र में कार्यरत संस्थाओं के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, परामर्शक अथवा सदस्य के रूप में विभिन्न भाषाओं की, शिक्षा की और समाज की सेवा में आपकी सक्रियता निरन्तर रही है।

देवर्षि कलानाथ शास्त्री जैसे विपुल कृतित्व और सुदीर्घ सारस्वत सेवा वाले विद्वान् का सम्मान राजकीय और अराजकीय संस्थानों द्वारा समय-समय पर किया जाता रहे, यह स्वाभाविक ही था। उनके कुछ सम्मानों एवं पुरस्कारों का विवरण इस प्रकार है-

प्रमुख सम्मान एवं उपाधियाँ

- राजस्थान सरकार द्वारा उत्कृष्ट लेखन पर सम्मान (1988)
- भारती मन्दिर, जयपुर द्वारा 'साहित्य महोदधि' उपाधि (1993)
- राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन जयपुर द्वारा सम्मानित (1994)
- वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ, जयपुर द्वारा सम्मानित (1994)
- भारत सेवक समाज जयपुर द्वारा सम्मानित (1993)

- ज्योतिष परिषद् शोध संस्थान, जयपुर (1995 एवं 1997)
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली द्वारा (1995 एवं 1998)
- गुजरात संस्कृत साहित्य अकादमी द्वारा (1997) राजस्थान सरकार द्वारा संस्कृत दिवस पर सम्मानित (1997)
- दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा सम्मान (1997)
- राजस्थान मैथिल परिषद् जयपुर (1998)
- राजस्थान सरकार के भाषा विभाग द्वारा (1998)
- संजय संग्रहालय, जयपुर (1999)
- व्यास बालाबक्श शोध संस्थान जयपुर द्वारा साहित्य शिरोमणि उपाधि (1999)
- महामहिम राष्ट्रपति द्वारा संस्कृत वैदुष्य के लिए सम्मानित (1998)
- वाणी परिषद् एवं तुलसीमानस संस्थान, जयपुर (1999)
- रामानन्द सप्तशती समिति, जयपुर (2000)
- सर्वब्राह्मण महासभा द्वारा 'सरस्वती पुत्र' सम्मान (2000)
- राजस्थान संस्कृत अकादमी द्वारा 'नाट्यवल्लरी' पर हरिजीवन मिश्र संस्कृत नाट्य पुरस्कार (2000)
- काशी के रामानन्दपीठ द्वारा रामानन्द पुरस्कार (2002)
- साहित्य अकादमी (केन्द्रीय) का संस्कृत पुरस्कार (2004)
- महामहोपाध्याय उपाधि (ला.ब.शा. राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ मानित विश्वविद्यालय, नई दिल्ली 2008)

इनके अतिरिक्त रोटरी क्लब, उच्चस्तरीय अध्ययन अनुसंधान संस्थान, अनुभूति संस्था, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, राजस्थान ब्राह्मण महासभा, विप्रसेवासमिति, वरिष्ठ नागरिक समिति, नरवर आश्रम सेवा समिति, गिरिधर शोध संस्थान, प्रज्ञानभारती पत्रिका, सत्यं शिवं सुन्दरम् आश्रम, संस्कृत भाषा प्रचार संस्थान कोटा, राजस्थान स्वतंत्रता सेनानी समिति, कलापकम्, संस्कृति संस्था आदि अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

श्री नवलकिशोर काङ्कर:

आप जयपुर के प्रसिद्ध कथावाचक एवं ज्योतिर्विद् पण्डित श्री जमनालालजी काङ्कर के सुपुत्र हैं। आपका जन्म आषाढ़ कृष्णा 13 संवत् 1967 को जयपुर में ही हुआ। आप जाति से गौड़ ब्राह्मण हैं। बाल्यकाल में ही माता-पिता के वियोग से आपको बहुत बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ा। आपने अपने पिताजी के जीवनकाल में संस्कृत, व्याकरण व साहित्य की साधारण शिक्षा प्राप्त कर ली थी। आपके पितृव्य पं. गणेश नारायणजी जयपुर तहसील में सिरस्तेदार थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अग्रवाल मिडिल स्कूल में हुई। षष्ठ कक्षा तक अध्ययन कर परिस्थितियों के कारण आपको स्कूल छोड़ना पड़ा और शेष सम्पूर्ण शिक्षा स्वतन्त्र रूप से प्राप्त की। आपकी शिक्षण योग्यता का विवरण इस प्रकार है-

1.	**संस्कृत**	(क) साहित्य काव्यतीर्थ	-	कलकत्ता (बंगाल)	प्रथम श्रेणी
		(ख) व्याकरणशास्त्री	-	पंजाब	प्रथम श्रेणी
		(ग) साहित्याचार्य	-	राजस्थान शिक्षा विभाग	द्वितीय श्रेणी
2.	**हिन्दी**	(घ) साहित्यरत्न	-	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयोग	द्वितीय श्रेणी
		(ङ) साहित्यरत्नाकर	-	राजस्थान विश्वविद्यालय	द्वितीय श्रेणी
		(च) प्रभाकर	-	पंजाब	प्रथम श्रेणी
		(छ) हिन्दी एडवांस	-	उत्तर प्रदेश	द्वितीय श्रेणी
3.	**अंगेजी**	(ज) इन्टरमीजियेट	-	पंजाब	

आपने समीक्षा चक्रवर्ती पण्डित मधुसूदन ओझा के पास रह कर लगभग 12 वर्ष तक व्याकरण, निरुक्त, शतपथ आदि ब्राह्मण एवं वैदिक विज्ञान का विशेष अध्ययन किया। अलवर राज्य में संस्कृत कॉलेज की स्थापना के समय राजकीय राजगढ़ संस्कृत कॉलेज के पाठशाला विभाग के प्रधानाध्यापक रहे। कुछ समय बाद आप पारीक हाईस्कूल जयपुर में हिन्दी अध्यापक बने और इस समय आप पारीक कॉलेज, जयपुर में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्य कर रहे हैं। इस पद पर कार्य करते हुए आपकी सेवाएँ उल्लेखनीय हैं।

आपको आपके जीवनकाल में अनेक स्थानों से उल्लेखनीय सम्मान प्राप्त हुआ है-

(1) राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन द्वारा आयोजित निबन्ध प्रतियोगिता में प्रथम।

2) स्काउटिंग संस्था द्वारा पदक प्रदान से पुरस्कृत।

(3) पारीक कॉलेज की प्रबन्ध समिति द्वारा सुवर्ण पदक से पुरस्कृत।

(4) बिहार के भूतपूर्व राज्यपाल लोकनायक डॉ. एम.एस. अणे द्वारा भा.वि.प्र. समिति द्वारा आयोजित अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन के मुजफ्फरनगर के अधिवेशन में 'कवि शिरोमणि' की उपाधि से सम्मानित।

(5) कांकरोलीस्थ विद्या भवन की रजत जयन्ती के अवसर पर लखनऊ के श्री दुलारेलाल भार्गव की अध्यक्षता में आयोजित कवि सम्मेलन में 'कवि भूषण' की उपाधि से विभूषित।

(6) प्रादेशिक ब्रह्मसभा के द्वितीय अधिवेशन (मलारना) में सभापति बने।

(7) इसी प्रकार मुजफ्फरनगर (उ.प्र.) में भा.वि.प्र. समिति के तत्त्वावधान में अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलन के पंचम अधिवेशन के सभापति बने।

(8) देहरादून में आयोजित ब्राह्मण सम्मेलन के सभापति बनाये गये। इत्यादि।

सन् 1969 में भारतीय विद्या प्रचार समिति, गोंडा (उ.प्र.) ने 'विद्यावाचस्पति' और योगिराज स्वामी श्री माधवानन्द महाराज प्रतिष्ठापित ज्ञानपीठ, जयपुर ने 'कविचक्रवर्ती' की उपाधि से आपको सम्मानित किया है। आपने सन् 1972 में राजस्थान संस्कृत संसदू, जयपुर द्वारा आयोजित अ.भा. प्रौढ़ संस्कृत गद्य लेखन प्रतियोगिता में 'यात्रा विलासम्' पुस्तक प्रस्तुत करके सर्वप्रथम स्थान प्राप्ति के उपलक्ष्य में 'गद्य सम्राट्' की सम्मानोपाधि प्राप्त की है। महामना मदनमोहन मालवीय द्वारा स्थापित अ.भा. सांस्कृतिक संस्था भारती परिषद्, प्रयाग ने वाङ्मय के विशिष्ट वैदुष्य के निमित्त आपको सन् 1973 में 'महामहिमोपाध्याय' का अलंकरण प्रदान किया है। राजस्थान सरकार से आपको सन् 1971 में शोधकार्य योजना में 500/- का और सन् 1975 में उत्तरप्रदेश राज्यपाल ने 'यात्रा विलासम्' पर 1000/- का और सन् 1975 में ही राजस्थान सरकार से 'यात्रा विलासम्' पर 2500/- का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। सन् 1977 में आपको राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर से 'प्रबन्धगद्यमाधुरी' पुस्तक पर 3000/- का माघस्मृति पुरस्कार भी मिला है। सन् 1979 में मार्च में उक्त अकादमी के भरतपुर में हुए वार्षिक समारोह में आपको विशिष्ट साहित्यकार के रूप में सम्मानित किया गया है। राजस्थान संस्कृत परिषद् ने भी अपने जयपुर अधिवेशन में सन् 1977 में आपको सम्मानित किया था।

आप जयपुर असोसियेशन के डिट्रक्टि स्काउट मास्टर रहे। आपके उल्लेखनीय शिष्यों में श्री दुर्गालाल बाढ़दार, श्री भंवरलाल शर्मा, श्री घनश्याम गोस्वामी, श्री गोपाल नारायण पारीक, श्री मणिशंकर शर्मा, श्री राधागोविन्द शर्मा, श्री ईश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, श्री नन्दकिशोर गौतम तथा इन पंक्तियों के लेखक का नाम भी सम्मिलित किया जा सकता है। आपकी निम्नांकित रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं-

(1) द्विजदशाप्रकाशः, (2) सरल शिवराजविजयः, (3) कृति परिचयः, (4) संस्कृत साहित्यं हिन्दी कवयश्च, (5) यज्ञोपवीतविज्ञानम्, (6) आयुर्वेदविमर्शः (संस्कृत रत्नाकर 8/3), (7) हिन्दी कवीनां संस्कृत भाव सञ्चितिः (सं. रत्नाकर 17/1), (8) महाकवि कुमारदासः, (9) पूर्व संस्कृतभाषा लोकभाषा आसीत्, (10) संस्कृत साहित्ये हास्यरसः इत्यादि' (1) संक्षिप्त शालिहोत्र ग्रन्थः, (2) विद्वान् विद्युग्रन्थः, (3) पितृसमीक्षा, (4) गीता विज्ञान भाष्य भूमिका, (5) विहारि स्मारिका, (6) पारीक कॉलेज पत्रिका, (7) श्री मधुसूदन ग्रन्थमाला, (8) अथर्ववेद संहितायाः द्वादश काण्डस्य, विंश काण्डस्य, पञ्चम काण्डस्य त्रिषु पृथक् पृथक् बन्धनेषु अभिनव 'सायण भाष्यस्य' सम्पादनं, गुरु गंगेश्वरानन्द नेशनल वेदामिशन, क्रमशः 1983, 1984, 1985 ई. प्रकाशित। (9) गुरुवेद ज्योतिः 'गुरु गंगेश्वरानन्द अभिनन्द ग्रन्थ' (2043 वि. संवत्) (10) पत्रसाहित्यम्, (11) द्विजदशाप्रकाशः, (12) धर्म-कर्म सर्वस्वम्, (13) स्वामि माधवानन्द महाभागानां जीवन दर्शनम्, (14) अभिभाषणम् (1959 ई. में), (15) वर्ण और ब्राह्मण, (16) स्वगत मंगल प्रशस्ति, (17) अग्निहोत्रदर्शन, (18) शिव दशपदिका स्तोत्रम्, (19) आधुनिक काव्यमंजरी, (20) सरल संस्कृत व्याकरण, (21) श्रीमद्भागवत, (22) यात्राविवरण, (23) शास्त्र सर्वस्वम्, (24) प्रबन्धामृतम्, (25) स्वामी गंगेश्वरानन्द जी की जीवन झाँकी, (26) नवल सतसई, (27) यात्रा के सुखद क्षण, (28) लाठी की बात, (29) सैर सपाटा, (30) राजस्थानी कादम्बरी, (31) जयपुर का उदार परिवार, कलयुगी सतसई, वेद स्वर मंगला 21/3 कांकर विशेषांक से साभार।

आप समस्या पूर्तियाँ भी किया करते हैं। एक पद्य उद्धृत है-

मुम्बापुरी वर्णनम् -

इभ्यैरलभ्यैरथ भव्यसभ्यैराकीर्ण-मार्गा भुक्नप्रसिद्धा।
अलौकिकाऽऽलोकवती सतीव 'मुम्बापुरी' कापि जयत्यलं पूः ।।
महान्धकारावृतपण्यपक्तिषु तडित्प्रदीपाभिनयेन भास्करः।
मिषेण विद्युद्व्यजनस्य चानिलः प्रीत्याऽथवा यामधितिष्ठतः सदा।

आपकी अनेक रचनाएँ संस्कृत रत्नाकर व भारती पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनका संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकार है- (1) एका स्मृतिः (सं.र. 24/12), (2) मुम्बापुरी वर्णनम् (सं.र. 24/10), (3) सुकन्या (भारती 1/9), (4) महाकवि तुलसीदासः (भारती 1/10), (5) आरोग्यं भास्करादिच्छेत् (भारती 11/4-5), (6) स्वतन्त्रभारते संस्कृतहासः (भारती 13/1)।

आपका देवलोक गमन 10 जुलाई, 1995 ई. को हुआ।

ISSN : 2582-6360

प्रकाशक : विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान - कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Website : vgda.in **Youtube :** www.youtube.com/c/vishwagurudeepashram **E-mail :** jaipur@yogaindailylife.org